२.१. स्त्रियाँ पूर्वधर नहीं होतीं

तिलोयपण्णत्ती के अष्टम महाधिकार में निम्नलिखित गाथा कही गयी है—

दसपुव्वधरा सोहम्मपहुदि सव्वट्ठसिद्धिपरियंतं।
चोद्दसपुव्वधरा तह लंतवकप्पादि वच्चंते॥ ८/५८०॥

इस गाथा में कहा गया है कि **दसपूर्वधारी** जीव सौधर्म कल्प से लेकर सर्वार्थसिद्धिपर्यन्त जाते हैं तथा **चौदहपूर्वधारियों** का गमन लान्तव कल्प से लेकर सर्वार्थसिद्धिपर्यन्त होता है। और यह पूर्वोद्धृत गाथा (८/५८२) में कहा जा चुका है कि स्त्रियाँ अच्युत स्वर्ग से ऊपर नहीं जातीं। इससे यह फलित होता है कि तिलोय-पण्णत्तिकार के अनुसार स्त्रियाँ पूर्वविद् नहीं हो सकतीं और पूर्वविद् न होने से आदि के दो शुक्लध्यान भी उन्हें नहीं हो सकते, जैसा कि तत्त्वार्थसूत्र में कहा गया है—"**शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः।**" (९/३७)। अतः उनकी मुक्ति संभव नहीं है।

यद्यपि श्वेताम्बर-मान्य तत्त्वार्थसूत्र में भी '**शुक्ले चाद्ये**' (९/३९) सूत्र है और वे यह भी मानते हैं कि शारीरिक स्थिति के कारण स्त्रियों कि लिए द्वादशांग आगम के अध्ययन का निषेध किया गया है, तथापि वे इसकी यह व्याख्या करते हैं कि उनके लिए द्वादशांग आगम के अध्ययन का निषेध शब्दरूप से किया गया है, अर्थरूप से नहीं। शब्दरूप से उसका अध्ययन न करने पर भी जब वे क्षपकश्रेणी पर आरूढ़ होती हैं तब श्रुतज्ञानावरणकर्म का विशिष्ट क्षयोपशम हो जाता है, जिससे उनमें द्वादशांग आगम की अर्थरूप से अभिव्यक्ति हो जाती है और उससे शुक्लध्यान संभव होता है।[१]

किन्तु तिलोयपण्णत्तिकार ने स्त्रियों के अच्युत स्वर्ग से ऊपर जाने का सर्वथा निषेध किया है, जो मुक्ति का भी निषेध है। इससे स्पष्ट है कि उन्हें स्त्रियों का **भावपूर्वविद्** होना भी मान्य नहीं है। यह श्वेताम्बरों और यापनीयों की मान्यता के विरुद्ध है। यह भी तिलोयपण्णत्ती के दिगम्बरीय ग्रन्थ होने का एक सबूत है।

२.२. मल्लिनाथ के साथ कोई स्त्रीदीक्षा नहीं

श्वेताम्बरीय आगम **ज्ञातृधर्मकथांग** में मल्लिनाथ को स्त्रीरूप में वर्णित किया गया है और कहा गया है कि जब उन्होंने दीक्षा ग्रहण की, तब उनके साथ उनकी **आभ्यन्तरपरिषद्** की तीन सौ स्त्रियाँ और **बाह्यपरिषद्** के तीन सौ पुरुष भी दीक्षित

---

१. "कथं द्वादशाङ्गप्रतिषेधः? तथाविधविग्रहे ततो दोषात्। श्रेणीपरिणतौ तु कालगर्भवद् भावतो भावोऽविरुद्ध एव।" ललितविस्तरा/ हरिभद्रसूरि/ स्त्रीमुक्ति गा.३/पृ. ४०६।

हुए। देखिए—

''मल्ली णं अरहा---तिहिं इत्थीसएहिं अब्भिंतरियाए परिसाए, तिहिं पुरिससयेहिं बाहिरियाए परिसाए सद्धिं मुंडे भवित्ता पव्वइए।'' (अध्ययन ८/मल्ली/ पृ.२७७)।

किन्तु **तिलोयपण्णत्ती में मल्लिनाथ का वर्णन पुरुष के रूप में है**[२] और उनके साथ एक भी स्त्री के दीक्षित होने का कथन नहीं है, केवल तीन सौ राजकुमारों के दीक्षा लेने की बात कही गई है। यथा—

पव्वजिदो मल्लिजिणो रायकुमारेहि ति-सय-मेत्तेहिं।
पासजिणो वि तह च्चिय एक्को च्चिय वड्ढमाणजिणो॥ ४/६७५॥

इसी प्रकार **ज्ञातृधर्मकथांग** में कहा गया है कि मल्ली अरहंत के साथ आभ्यन्तरपरिषद् की पाँच सौ आर्यिकाएँ और बाह्यपरिषद् के पाँच सौ साधु सिद्ध हुए हैं। यथा—

''मल्ली ण---पंचहिं अज्जियाँ-सएहिं अब्भिंतरियाए परिसाए, पंचहिं अणगारसएहिं बाहिरियाए परिसाए---सिद्धे।'' (अध्ययन ८/मल्ली/ पृ. २८०)।

किन्तु **तिलोयपण्णत्ती** में मल्लिनाथ के साथ एक भी स्त्री के मुक्त होने का कथन नहीं है, केवल पाँच सौ मुनियों के मोक्ष को प्राप्त होने का उल्लेख है। यथा—

पंचमिपदोससमए फग्गुणबहुलम्मि भरणिणक्खत्ते।
सम्मेदे मल्लिजिणो पंच-सय-समं गदो मोक्खं॥ ४/१२१४॥

यह तिलोयपण्णत्ती में स्त्रीमुक्ति की अस्वीकृति का एक अन्य ज्वलन्त प्रमाण है।

२.३. समस्त तीर्थंकरों के तीर्थ में केवल मुनियों को ही मोक्षप्राप्ति

तिलोयपण्णत्ती (४/११७७-९१) में आर्यिकाओं के लिए **विरती** शब्द का प्रयोग किया गया है। यह प्रयोग उपचारात्मक है, क्योंकि उनके महाव्रत भी उपचारात्मक ही होते हैं। इसका स्पष्टीकरण **मूलाचार** के अध्याय में किया जा चुका है।[३]

भगवान् ऋषभदेव से लेकर महावीर पर्यन्त प्रत्येक तीर्थंकर के तीर्थ में आर्यिकाओं की संख्या लाखों में थी। कुल मिलाकर उनकी संख्या पचास लाख, छप्पन हजार, दो सौ पचास (५०,५६,२५०) बतलायी गई है।[४] किन्तु मोक्षप्राप्त करने वालों में केवल

---

२. ''मल्लिजिणो---संजादो।'' तिलोयपण्णत्ती ४/५५१।
३. देखिए, अध्याय १५/प्रकरण २/ शीर्षक १।
४. तिलोयपण्णत्ती ४/११७७-८८।

मुनियों का ही उल्लेख है। एक भी आर्यिका या विरती के मुक्तिगमन का कथन नहीं है।[५] स्वयं मल्लिनाथ तीर्थंकर के काल में भी केवल २८,८०० यतियों को मोक्ष-प्राप्ति बतलायी गयी है, मोक्ष प्राप्त करनेवालों में आर्यिकाओं का नामोनिशाँ भी नहीं है। तिलोयपण्णत्ती में स्त्रीमुक्ति की अस्वीकृति का इससे बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है?

२.४. मल्लिनाथ का अवतार अपराजित स्वर्ग से, जयन्त से नहीं

श्वेताम्बर-आगम ज्ञातृधर्मकथांग में कहा गया है कि मल्लितीर्थंकरी जयन्त नामक अनुत्तर स्वर्ग से अवतरित होकर मिथिला की रानी प्रभादेवी के गर्भ में आयी थीं,[६] जब कि तिलोयपण्णत्ती के अनुसार मल्लितीर्थंकर का अवतार अपराजित नामक अनुत्तर स्वर्ग से हुआ था।[७] यापनीय श्वेताम्बर-आगमों को मानते थे। अतः तिलोयपण्णत्ती का मत यापनीयमत के विरुद्ध है। इससे भी सिद्ध होता है कि तिलोयपण्णत्ती यापनीयसम्प्रदाय का ग्रन्थ नहीं है।

२.५. हुण्डावसर्पिणी के दोषों में स्त्रीतीर्थंकर का उल्लेख नहीं

श्वेताम्बरसाहित्य के अनुसार वर्तमान हुण्डावसर्पिणीकाल में निम्नलिखित दस आश्चर्यजनक घटनाएँ घटी हैं—१.तीर्थंकरों पर उपसर्ग, २.भगवान् महावीर का गर्भा-पहरण, ३.स्त्री को तीर्थंकरत्व की प्राप्ति, ४.अभावित परिषत् : भगवान् महावीर के प्रथम उपदेश की विफलता। उसे सुनकर किसी ने चारित्र अंगीकार नहीं किया, ५. कृष्ण का अमरकंका नगरी में गमन, ६.चन्द्र और सूर्य देवों का विमानसहित पृथ्वी पर अवतरण, ७.हरिवंशकुल की उत्पत्ति, ८.चमर का उत्पात: चमरेन्द्र का सौधर्मकल्प में गमन, ९.एक समय में एक साथ एक सौ आठ जीवों को सिद्धत्व की प्राप्ति, और १०.असंयमी की पूजा।[८]

इन दस आश्चर्यजनक घटनाओं में मल्लीकुमारी स्त्री का तीर्थंकरपद प्राप्त करना भी एक आश्चर्यजनक घटना बतलाई गई है। किन्तु, तिलोयण्पण्णत्ती में हुण्डावसर्पिणीकाल के लक्षणों का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

---

५. तिलोयपण्णत्ती ४/१२२९-४०।

६. "तए णं ये महब्बले देवे---जयंताओ विमाणाओ बत्तीससागरोवमट्ठिइयाओ अणंतरं चयं चइत्ता इहेव जंबुद्दीपे दीवे भारहे वासे मिहिलाए रायहाणीए कुंभगस्स रन्नो पभावईए, देवीए कुच्छिंसि ---गब्भत्ताए वक्कंते।" ज्ञाताधर्मकथा/अध्ययन ८, मल्ली/अनुच्छेद २४/पृष्ठ २२२।

७. अपराजियाभिहाणा अर-णमि-मल्लीओ णेमिणाहो य।
सुमई जयंत-ठाणा आरण-जुगला य सुविहि सयिलया॥ ४/५३०॥ तिलोयपण्णत्ती।

८. स्थानांगसूत्र १०/१६०/संग्रहणी गाथा १-२/तथा प्रवचनसारोद्धार/गा.८८५-८९।

१. सुषमदुःषम (तृतीयकाल) की स्थिति में कुछ काल शेष रहने पर भी वर्षा आदि होने लगती है और विकलेन्द्रिय जीवों की उत्पत्ति शुरू हो जाती है।

२. इस तृतीयकाल में ही कल्पवृक्षों का अन्त और कर्मभूमि का प्रारंभ हो जाता है। प्रथम तीर्थंकर और प्रथम चक्रवर्ती भी उत्पन्न हो जाते हैं।

३. चक्रवर्ती का विजयभंग और तृतीयकाल में ही थोड़े से जीवों का मोक्षगमन होता है तथा चक्रवर्ती के द्वारा ब्राह्मणवर्ण की उत्पत्ति की जाती है।

४. दुःषमसुषम (चतुर्थकाल) में केवल ५८ शलाका पुरुष उत्पन्न होते हैं और नौवें से सोलहवें तीर्थंकर तक सात तीर्थों में धर्म की व्युच्छित्ति हो जाती है।

५. ग्यारह रुद्र और कलहप्रिय नौ नारद होते हैं तथा सातवें, तेईसवें और अन्तिम तीर्थंकर पर उपसर्ग भी होता है।

६. तृतीय, चतुर्थ एवं पंचमकाल में उत्तमधर्म को नष्ट करने वाले दुष्ट, पापिष्ठ, कुदेव और कुलिंगी भी दिखने लगते हैं, चाण्डाल, शबर आदि जातियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। दुःषमकाल में ४२ कल्की और उपकल्की भी होते हैं।

७. अतिवृष्टि, अनावृष्टि, भूवृद्धि, वज्राग्नि का पतन आदि दोष भी हुआ करते हैं।[९]

इनमें गर्भापहरण और स्त्री के तीर्थंकर होने आदि की घटनाओं का वर्णन नहीं है, जब कि ये श्वेताम्बरसाहित्य में वर्णित हैं और यापनीयों को भी मान्य हैं। यदि तिलोयपण्णत्ती श्वेताम्बरीय या यापनीय ग्रन्थ होता, तो उसमें इन घटनाओं का वर्णन छूट नहीं सकता था। ये घटनाएँ तो इन दोनों परम्पराओं की आत्मा हैं। इन घटनाओं का अनुल्लेख इस बात का प्रमाण है कि तिलोयपण्णत्ती में स्त्रीमुक्ति मान्य नहीं की गई है। यह तिलोयपण्णत्ति के दिगम्बरीय ग्रन्थ होने का पक्का सबूत है।

३
गृहस्थमुक्तिनिषेध

श्वेताम्बर और यापनीय दोनों सम्प्रदायों में गृहस्थलिंग से भी मुक्ति अर्थात् गृहस्थ की भी मुक्ति मानी गयी है। हरिभद्रसूरि गृहिलिंग से मुक्ति का उदाहरण देते हुए कहते हैं—"**गृहिलिङ्गसिद्धा मरुदेवीप्रभृतयः**"[१०] अर्थात् मरुदेवी आदि गृहस्थलिंग से सिद्ध हुए हैं।

---

९. तिलोयपण्णत्ती ४/१६३७-४५।
१०. ललितविस्तरा/ गा.२/ पृ. ३९९।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

किन्तु तिलोयपण्णत्ती कहती है कि चतुर्विध दान देनेवाले, कषायरहित और पंचपरमेष्ठी की भक्ति से युक्त देशव्रतधारी श्रावक सौधर्म से लेकर अच्युत (सोलहवें) स्वर्ग तक के ही देवों की पर्याय प्राप्त कर पाते हैं। उससे ऊपर निर्ग्रन्थ मुनियों का ही गमन होता है। इससे सम्बन्धित गाथाएँ पूर्व में **सवस्त्रमुक्तिनिषेध** शीर्षक १ के अन्तर्गत उद्धृत की जा चुकी हैं। इससे स्पष्ट है कि तिलोयपण्णत्ती गृहिलिंग से मुक्ति की मान्यता को अमान्य करती है, जो श्वेताम्बरों और यापनीयों की मान्यता है। यह तिलोयपण्णत्ती के दिगम्बरीयग्रन्थ होने के अनेक प्रमाणों में से एक प्रमाण है।

४
अन्यलिंगिमुक्तिनिषेध

यापनीय और श्वेताम्बर दोनों परम्पराएँ जैनेतर लिंग से भी मुक्ति स्वीकार करती हैं। **हरिभद्रसूरि** ने इसके समर्थन में परिव्राजकों का उदाहरण दिया है—"**अन्यलिङ्गसिद्धाः परिव्राजकादिलिङ्गसिद्धाः।**"[१०] अर्थात् परिव्राजक आदि साधुओं के लिंग से सिद्ध होनेवाले अन्यलिंग से सिद्ध हैं। किन्तु **तिलोयपण्णत्ती** में कहा गया है—

चरया परिवज्जधरा मंदकसाया पियंवदा केई।
कमसो भावणपहुदी जम्मंते बम्हकप्पंतं॥ ८/५८५॥

अनुवाद—"मन्दकषायी और प्रियभाषी कितने ही चरक और परिव्राजक साधु क्रमशः भवनवासी देवों से लेकर ब्रह्मकल्प तक के देवों में जन्म लेते हैं।"

तणुदंडणादिसहिया जीवा जे अमंदकोहजुदा।
कमसो भावणपहुदी केई जम्मंति अच्चुदं जाव॥ ८/५८७॥

अनुवाद—"जो कायक्लेशादि तप करनेवाले, अमन्दक्रोधयुक्त आजीवक आदि साधु हैं, वे भवनवासियों से लेकर अच्युतस्वर्ग तक के देव बनते हैं।"

अच्युतस्वर्ग से ऊपर केवल जिनलिंगधारी साधु ही जा सकते हैं, यह प्रतिपादित करनेवाली गाथाएँ (८/५८३-८४) पूर्व में उद्धृत की जा चुकी हैं।

इस तरह तिलोयपण्णत्ती में अन्यलिंग से भी मुक्ति का निषेध किया गया है, जो श्वेताम्बर और यापनीय मान्यताओं का निषेध है। तब यह यापनीयपरम्परा का ग्रन्थ कैसे हो सकता है? नहीं हो सकता।

५
केवलिभुक्तिनिषेध

तिलोयपण्णत्ती में केवलीभुक्ति का भी स्पष्ट शब्दों में निषेध किया गया है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

अर्थागम के कर्त्ता भगवान् महावीर के गुणों का वर्णन करते हुए यतिवृषभाचार्य ने कहा है—

चउविह-उवसग्गेहिं णिच्चविमुक्को कसायपरिहीणो।
छुह-पहुदि-परिसहेहिं परिचत्तो रायदोसेहिं॥ १/५९॥

एदेहिं अण्णेहिं विरचिद-चरणारविंद-जुगपूजो।
दिट्ठ-सयलट्ठ-सारो महवीरो अत्थ-कत्तारो॥ १/६४॥

अनुवाद—"जो देवकृत, मनुष्यकृत, तिर्यंचकृत और अचेतनकृत, इन चार प्रकार के उपसर्गों से सदा विमुक्त हैं, कषायों से शून्य हैं, **क्षुधादि बाईस परीषहों एवं रागद्वेष से रहित हैं,** देवादि तथा अन्यों के द्वारा जिनके चरणकमल पूजित हैं और जिन्होंने समस्त पदार्थों के सार का उपदेश किया है, वे भगवान् महावीर अर्थागम के कर्त्ता हैं।"

यहाँ भगवान् महावीर को स्पष्ट शब्दों में क्षुधा आदि बाईस परीषहों से रहित कहा गया है। केवलिभुक्ति का इससे अधिक खुला निषेध और किन शब्दों में हो सकता है? इसके बाबजूद प्रतिपक्षी विद्वान् ने तिलोयपण्णत्ती को यापनीयपरम्परा का ग्रन्थ सिद्ध करने के लिए हेत्वाभासों का विशाल मायाजाल खड़ा कर दिया है। केवलिभुक्तिनिषेध के प्रतिपादक अन्य उल्लेख भी ग्रन्थ में हैं। केवलज्ञानजन्य ग्यारह अतिशयों के वर्णन-प्रसंग में ग्रन्थकार यतिवृषभ कहते हैं—

जोयणसदमज्जादं सुभिक्खदा चउदिसासु णियठाणा।
णहयल-गमणमहिंसा भोयण-उवसग्ग-परिहीणा॥ ४/९०८॥

अनुवाद—"केवलज्ञान होने पर जहाँ तीर्थंकर विराजमान होते हैं, वहाँ से सौ योजन दूर तक सुभिक्ष हो जाता है, उनका आकाश गमन होने लगता है, अहिंसामय वातावरण निर्मित हो जाता है और भगवान् भोजन तथा उपसर्गों से रहित हो जाते हैं।"

इतना ही नहीं, ग्रन्थकार का कथन है कि जिनेन्द्रदेव के माहात्म्य से समवसरण में आये जीवों को भी भूख-प्यास आदि की पीड़ा नहीं होती—

आतंक-रोग-मरणुप्पत्तीओ वेर-काम-बाधाओ।
तण्हा-छुह-पीडाओ जिण-माहप्पेण ण वि होंति॥ ४/९४२॥

इस तरह केवलिभुक्ति का निषेध भी तिलोयपण्णत्ती की वह विशेषता है, जो उसे दिगम्बरपरम्परा का ग्रन्थ प्रमाणित करती है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

६

आचार्यपरम्परा दिगम्बरमतानुसार

तिलोयपण्णत्ती में भगवान् महावीर के बाद की जो आचार्यपरम्परा दी गई है, वह दिगम्बरमत के अनुसार है। देखिए—

केवली — गौतम, लोहार्य (सुधर्म) और जम्बू। (४/१४८८-८९)।

श्रुतकेवली — नन्दी (विष्णु), नन्दिमित्र, अपराजित, गोवर्धन और भद्रबाहु। (४/१४९४-९५)।

दशपूर्वी — विशाखाचार्य, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जय, नाग, सिद्धार्थ, धृतिषेण, विजय, बुद्धिल, गङ्गदेव और सुधर्म। (४/१४९७-९८)।

एकादशांगधारी — नक्षत्र, जयपाल, पाण्डु, ध्रुवसेन और कंस। (४/१५००)।

आचारांगधारी — सुभद्र, यशोभद्र, यशोबाहु और लोहार्य। (४/१५०२)।

यही आचार्यपरम्परा वीरसेन स्वामी ने धवला में भी बतलायी है। (ष.खं./पु.१/१,१,१/पृ.६६-६७) जिनसेनकृत हरिवंशपुराण में भी इसी का उल्लेख है। (१/६०-६५)।

यापनीयों की किसी स्वतंत्र आचार्यपरम्परा का पता नहीं चलता। वे श्वेताम्बर-आगमों को ही मानते थे। इसलिए श्वेताम्बर-आचार्यपरम्परा को ही यापनीयों की आचार्य-परम्परा मानना होगा। नन्दीसूत्र (गा.२५-५०) में तीर्थंकर महावीर के पश्चात् हुए आचार्यों का क्रम इस प्रकार बतलाया गया है—सुधर्मा, जम्बू, प्रभव, शय्यंभव, यशोभद्र, सम्भूतिविजय, भद्रबाहु (ये अन्तिम चौदहपूर्वधर थे), स्थूलभद्र, महागिरि, सुहस्ति, बहुल, बलिस्सह, स्वाति, श्याम, शाण्डिल्य, समुद्र, मंगु, धर्म, भद्रगुप्त, आर्यरक्षित, नन्दिल, नागहस्ती, रेवतिनक्षत्र, सिंह, स्कन्दिल आदि।

यतिवृषभ ने तिलोयपण्णत्ती में नन्दीसूत्र की इस आचार्यपरम्परा को स्थान नहीं दिया है, जिसका अर्थ स्पष्ट है कि वे इस परम्परा से सम्बद्ध नहीं हैं। अब विचारणीय है कि जिस ग्रन्थ में यापनीयों की आचार्यपरम्परा को मान्यता न दी गयी हो, उसे अमान्य किया गया हो, क्या वह यापनीय-परम्परा का ग्रन्थ हो सकता है? दिगम्बर-आचार्यपरम्परा को मान्य किये जाने से सिद्ध है कि यह दिगम्बरपरम्परा का ग्रन्थ है। आश्चर्य तो यह है कि माननीय डॉक्टर सागरमल जी की दृष्टि से इतना बड़ा तथ्य ओझल कैसे हो गया?

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

७

आगमों के विच्छेद का कथन

तिलोयपण्णत्ती में यह कथन है कि उपर्युक्त दिगम्बर आचार्यों की परम्परा में आचार्यों के स्वर्गारोहण के साथ-साथ अंगों और पूर्वों का ज्ञान क्रमशः विच्छिन्न होता गया और वीरनिर्वाण के ६८३ वर्ष बाद सभी आचार्य सभी अंगों और पूर्वों के एकदेश के धारी हुए। यथा—

जम्बूस्वामी अन्तिम अनुबद्ध केवली हुए (ति.प./४/१४८९)। उनके मोक्ष चले जाने पर क्रमशः नन्दी (विष्णु), नन्दिमित्र, अपराजित, गोवर्धन और भद्रबाहु बारह अंगों के धारक होते हुए **चौदहपूर्वी** नाम से प्रसिद्ध हुए। अंत में भद्रबाहु के स्वर्ग चले जाने पर सकल श्रुतज्ञान का धारक श्रुतकेवली कोई नहीं रहा। (ति.प./४/१४९४-९६)।

उनके बाद विशाख आदि ग्यारह आचार्य दस पूर्वों के धारी हुए। इन सबके स्वर्गवासी हो जाने पर कोई दसपूर्वधारी नहीं हुआ। (ति.प./४/१४९७-९९)। किन्तु उनके बाद नक्षत्र आदि पाँच आचार्य ग्यारह अंगों के धारी हुए। वे चौदह पूर्वों के एकदेश के भी धारी थे। उनके स्वर्गस्थ हो जाने पर फिर कोई ग्यारह अंगों का धारक नहीं रहा। (ति.प./४/१५००-१)। तत्पश्चात् सुभद्र आदि चार आचार्य केवल आचारांग के धारक हुए। वे आचारांग के अतिरिक्त शेष ग्यारह अंगों और चौदह पूर्वों के एकदेश के भी धारक थे। इनके स्वर्गगत हो जाने पर भरतक्षेत्र में आचारांग के पूर्ण ज्ञान का धारक कोई नहीं हुआ। (ति.प./४/१५०२-४)।

तिलोयपण्णत्तिकार अन्त में कहते हैं कि इन आचार्यों के स्वर्गस्थ हो जाने के बाद (वीर नि० सं० ६८३ के पश्चात्) सभी अंगों और पूर्वों के एकदेश की ज्ञानाधारा क्रमशः क्षीण होती हुई पंचमकाल की शेष अवधि अर्थात् (२१०००-६८३) = २०,३१७ वर्ष पर्यन्त प्रवाहित होती रहेगी। तत्पश्चात् श्रुततीर्थ का सर्वथा व्युच्छेद हो जायेगा। (ति.प./४/१५०५)।

श्रुत विच्छेद का ठीक इसी प्रकार का वर्णन वीरसेन स्वामी ने भी धवला और जयधवला में किया है।[११]

उपर्युक्त नाम के आचार्यों के क्रमशः स्वर्गगत होने पर अंगों और पूर्वों का ज्ञान उत्तरोत्तर विच्छिन्न होता गया, ऐसी मान्यता श्वेताम्बरपरम्परा में नहीं है। यापनीयपरम्परा

---

११. धवला/ष. खं./पु.१/पृ.६६-६८, जयधवला / क.पा./भा.१/पृ.७७-८०।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

के विषय में तो कुछ कहा ही नहीं जा सकता, क्योंकि उस परम्परा का ऐसा कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है, जिससे इस विषय में कुछ पता चल सके। श्वेताम्बरपरम्परा को ही यापनीयपरम्परा मानकर चला जाय, तो सिद्ध है कि यापनीयपरम्परा में भी उपर्युक्त नाम के आचार्यों के स्वर्गस्थ होने के साथ-साथ अंगों और पूर्वों के उत्तरोत्तर विच्छेद होने की मान्यता का अभाव था। तब तिलोयपण्णत्ती में उपर्युक्त प्रकार के श्रुतविच्छेद का उल्लेख होना निश्चितरूप से यापनीयपरम्परा के विरुद्ध है। अतः सिद्ध है कि यापनीयपरम्परा-विरोधी मान्यताओं का प्रतिपादक ग्रन्थ यापनीयग्रन्थ नहीं हो सकता।

डॉ० सागरमल जी भी मानते हैं कि आगमविच्छेद का उल्लेख यापनीयमत के विरुद्ध है। वे लिखते हैं—"यतिवृषभ को यापनीय मानने में एकमात्र बाधा यह है कि उनकी तिलोयपण्णत्ती में आगमों के विच्छेद का जो क्रम दिया है, वह यापनीयपरम्परा के अनुकूल नहीं है।" (जै.ध.या.स./११५)। किन्तु वे तिलोयपण्णत्ती को येन केन प्रकारेण यापनीयग्रन्थ सिद्ध करने पर तुले हुए थे, इसलिए उन्होंने यह घोषित कर दिया कि उपर्युक्त उल्लेख प्रक्षिप्त है अथवा यापनीय भी आगमविच्छेद मानने लगे थे। (जै.ध.या.सं./पृ.११६) उनके इस कथन की असत्यता के प्रमाण द्वितीय प्रकरण में प्रस्तुत किये जायेंगे।

८

कल्पों की संख्या १२ और १६ दोनों मान्य

तिलोयपण्णत्तिकार ने बतलाया है कि कल्पों की संख्या के विषय में आचार्यों के दो मत हैं। कोई आचार्य कल्पों की संख्या १२ बतलाते हैं और कोई १६। देखिए—

बारस कप्पा केई, केई सोलस वदंति आइरिया।
तिविहाणि भासिदाणि कप्पातीदाणि पडलाणि॥ ८/११५॥

यतिवृषभ ने बारहकल्पों के भी नाम बतलाये हैं और सोलह कल्पों के भी। (ति.प./८/१२०, १२७-१२८)। यतः तिलोयपण्णत्ती में स्त्रीमुक्ति, केवलिभुक्ति आदि का निषेध किया गया है, इससे सिद्ध है कि यह दिगम्बरपरम्परा का ग्रन्थ है और इसके कर्त्ता ने कल्पों की संख्या के विषय में दो मत बतलाये हैं और उनमें से किसी का भी अपनी तरफ से निषेध नहीं किया, इससे स्पष्ट होता है कि ये दोनों मत दिगम्बराचार्यों के हैं, अतः उसे दोनों स्वीकार्य हैं।

पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार ने भी स्वीकार किया है कि "**दिगम्बर सिंहनन्दी** ने **वरांगचरित** में स्वर्गसंख्या १२ दी है, इसलिए दिगम्बर-सम्प्रदाय में इस संख्या का

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

७

आगमों के विच्छेद का कथन

तिलोयपण्णत्ती में यह कथन है कि उपर्युक्त दिगम्बर आचार्यों की परम्परा में आचार्यों के स्वर्गारोहण के साथ-साथ अंगों और पूर्वों का ज्ञान क्रमशः विच्छिन्न होता गया और वीरनिर्वाण के ६८३ वर्ष बाद सभी आचार्य सभी अंगों और पूर्वों के एकदेश के धारी हुए। यथा—

जम्बूस्वामी अन्तिम अनुबद्ध केवली हुए (ति.प./४/१४८९)। उनके मोक्ष चले जाने पर क्रमशः नन्दी (विष्णु), नन्दिमित्र, अपराजित, गोवर्धन और भद्रबाहु बारह अंगों के धारक होते हुए **चौदहपूर्वी** नाम से प्रसिद्ध हुए। अंत में भद्रबाहु के स्वर्ग चले जाने पर सकल श्रुतज्ञान का धारक श्रुतकेवली कोई नहीं रहा। (ति.प./४/१४९४-९६)।

उनके बाद विशाख आदि ग्यारह आचार्य दस पूर्वों के धारी हुए। इन सबके स्वर्गवासी हो जाने पर कोई दसपूर्वधारी नहीं हुआ। (ति.प./४/१४९७-९९)। किन्तु उनके बाद नक्षत्र आदि पाँच आचार्य ग्यारह अंगों के धारी हुए। वे चौदह पूर्वों के एकदेश के भी धारी थे। उनके स्वर्गस्थ हो जाने पर फिर कोई ग्यारह अंगों का धारक नहीं रहा। (ति.प./४/१५००-१)। तत्पश्चात् सुभद्र आदि चार आचार्य केवल आचारांग के धारक हुए। वे आचारांग के अतिरिक्त शेष ग्यारह अंगों और चौदह पूर्वों के एकदेश के भी धारक थे। इनके स्वर्गगत हो जाने पर भरतक्षेत्र में आचारांग के पूर्ण ज्ञान का धारक कोई नहीं हुआ। (ति.प./४/१५०२-४)।

तिलोयपण्णत्तिकार अन्त में कहते हैं कि इन आचार्यों के स्वर्गस्थ हो जाने के बाद (वीर नि० सं० ६८३ के पश्चात्) सभी अंगों और पूर्वों के एकदेश की ज्ञानाधारा क्रमशः क्षीण होती हुई पंचमकाल की शेष अवधि अर्थात् (२१०००-६८३) = २०,३१७ वर्ष पर्यन्त प्रवाहित होती रहेगी। तत्पश्चात् श्रुततीर्थ का सर्वथा व्युच्छेद हो जायेगा। (ति.प./४/१५०५)।

श्रुत विच्छेद का ठीक इसी प्रकार का वर्णन वीरसेन स्वामी ने भी धवला और जयधवला में किया है।[११]

उपर्युक्त नाम के आचार्यों के क्रमशः स्वर्गगत होने पर अंगों और पूर्वों का ज्ञान उत्तरोत्तर विच्छिन्न होता गया, ऐसी मान्यता श्वेताम्बरपरम्परा में नहीं है। यापनीयपरम्परा

---

११. धवला/ष. खं./पु.१/पृ.६६-६८, जयधवला / क.पा./भा.१/पृ.७७-८०।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

के विषय में तो कुछ कहा ही नहीं जा सकता, क्योंकि उस परम्परा का ऐसा कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है, जिससे इस विषय में कुछ पता चल सके। श्वेताम्बरपरम्परा को ही यापनीयपरम्परा मानकर चला जाय, तो सिद्ध है कि यापनीयपरम्परा में भी उपर्युक्त नाम के आचार्यों के स्वर्गस्थ होने के साथ-साथ अंगों और पूर्वों के उत्तरोत्तर विच्छेद होने की मान्यता का अभाव था। तब तिलोयपण्णत्ती में उपर्युक्त प्रकार के श्रुतविच्छेद का उल्लेख होना निश्चितरूप से यापनीयपरम्परा के विरुद्ध है। अतः सिद्ध है कि यापनीयपरम्परा-विरोधी मान्यताओं का प्रतिपादक ग्रन्थ यापनीयग्रन्थ नहीं हो सकता।

डॉ० सागरमल जी भी मानते हैं कि आगमविच्छेद का उल्लेख यापनीयमत के विरुद्ध है। वे लिखते हैं—"यतिवृषभ को यापनीय मानने में एकमात्र बाधा यह है कि उनकी तिलोयपण्णत्ती में आगमों के विच्छेद का जो क्रम दिया है, वह यापनीयपरम्परा के अनुकूल नहीं है।" (जै.ध.या.स./११५)। किन्तु वे तिलोयपण्णत्ती को येन केन प्रकारेण यापनीयग्रन्थ सिद्ध करने पर तुले हुए थे, इसलिए उन्होंने यह घोषित कर दिया कि उपर्युक्त उल्लेख प्रक्षिप्त है अथवा यापनीय भी आगमविच्छेद मानने लगे थे। (जै.ध.या.सं./पृ.११६) उनके इस कथन की असत्यता के प्रमाण द्वितीय प्रकरण में प्रस्तुत किये जायेंगे।

८

कल्पों की संख्या १२ और १६ दोनों मान्य

तिलोयपण्णत्तिकार ने बतलाया है कि कल्पों की संख्या के विषय में आचार्यों के दो मत हैं। कोई आचार्य कल्पों की संख्या १२ बतलाते हैं और कोई १६। देखिए—

बारस कप्पा केई, केई सोलस वदंति आइरिया।
तिविहाणि भासिदाणि कप्पातीदाणि पडलाणि॥ ८/११५॥

यतिवृषभ ने बारहकल्पों के भी नाम बतलाये हैं और सोलह कल्पों के भी। (ति.प./८/१२०, १२७-१२८)। यतः तिलोयपण्णत्ती में स्त्रीमुक्ति, केवलिभुक्ति आदि का निषेध किया गया है, इससे सिद्ध है कि यह दिगम्बरपरम्परा का ग्रन्थ है और इसके कर्त्ता ने कल्पों की संख्या के विषय में दो मत बतलाये हैं और उनमें से किसी का भी अपनी तरफ से निषेध नहीं किया, इससे स्पष्ट होता है कि ये दोनों मत दिगम्बराचार्यों के हैं, अतः उसे दोनों स्वीकार्य हैं।

पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार ने भी स्वीकार किया है कि "**दिगम्बर सिंहनन्दी** ने **वरांगचरित** में स्वर्गसंख्या १२ दी है, इसलिए दिगम्बर-सम्प्रदाय में इस संख्या का

के विषय में तो कुछ कहा ही नहीं जा सकता, क्योंकि उस परम्परा का ऐसा कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है, जिससे इस विषय में कुछ पता चल सके। श्वेताम्बरपरम्परा को ही यापनीयपरम्परा मानकर चला जाय, तो सिद्ध है कि यापनीयपरम्परा में भी उपर्युक्त नाम के आचार्यों के स्वर्गस्थ होने के साथ-साथ अंगों और पूर्वों के उत्तरोत्तर विच्छेद होने की मान्यता का अभाव था। तब तिलोयपण्णत्ती में उपर्युक्त प्रकार के श्रुतविच्छेद का उल्लेख होना निश्चितरूप से यापनीयपरम्परा के विरुद्ध है। अतः सिद्ध है कि यापनीयपरम्परा-विरोधी मान्यताओं का प्रतिपादक ग्रन्थ यापनीयग्रन्थ नहीं हो सकता।

डॉ० सागरमल जी भी मानते हैं कि आगमविच्छेद का उल्लेख यापनीयमत के विरुद्ध है। वे लिखते हैं—"यतिवृषभ को यापनीय मानने में एकमात्र बाधा यह है कि उनकी तिलोयपण्णत्ती में आगमों के विच्छेद का जो क्रम दिया है, वह यापनीयपरम्परा के अनुकूल नहीं है।" (जै.ध.या.स./११५)। किन्तु वे तिलोयपण्णत्ती को येन केन प्रकारेण यापनीयग्रन्थ सिद्ध करने पर तुले हुए थे, इसलिए उन्होंने यह घोषित कर दिया कि उपर्युक्त उल्लेख प्रक्षिप्त है अथवा यापनीय भी आगमविच्छेद मानने लगे थे। (जै.ध.या.सं./पृ.११६) उनके इस कथन की असत्यता के प्रमाण द्वितीय प्रकरण में प्रस्तुत किये जायेंगे।

८

कल्पों की संख्या १२ और १६ दोनों मान्य

तिलोयपण्णत्तिकार ने बतलाया है कि कल्पों की संख्या के विषय में आचार्यों के दो मत हैं। कोई आचार्य कल्पों की संख्या १२ बतलाते हैं और कोई १६। देखिए—

बारस कप्पा केई, केई सोलस वदंति आइरिया।
तिविहाणि भासिदाणि कप्पातीदाणि पडलाणि॥ ८/११५॥

यतिवृषभ ने बारहकल्पों के भी नाम बतलाये हैं और सोलह कल्पों के भी। (ति.प./८/१२०, १२७-१२८)। यतः तिलोयपण्णत्ती में स्त्रीमुक्ति, केवलिभुक्ति आदि का निषेध किया गया है, इससे सिद्ध है कि यह दिगम्बरपरम्परा का ग्रन्थ है और इसके कर्त्ता ने कल्पों की संख्या के विषय में दो मत बतलाये हैं और उनमें से किसी का भी अपनी तरफ से निषेध नहीं किया, इससे स्पष्ट होता है कि ये दोनों मत दिगम्बराचार्यों के हैं, अतः उसे दोनों स्वीकार्य हैं।

पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार ने भी स्वीकार किया है कि "**दिगम्बर सिंहनन्दी** ने **वरांगचरित** में स्वर्गसंख्या १२ दी है, इसलिए दिगम्बर-सम्प्रदाय में इस संख्या का

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

सर्वथा एकान्त नहीं है।[१२] प्रसिद्ध श्वेताम्बर विद्वान् **पं० सुखलालजी संघवी** ने भी ऐसा ही मत व्यक्त किया है। वे लिखते हैं—"**दिगम्बरपरम्परा के भी प्राचीन ग्रन्थों में बारह कल्पों का कथन है।**"[१३]

इस तरह तिलोयपण्णत्ती में दिगम्बरपरम्परानुसार कल्पों की संख्या १६ और १२ दोनों मानी गयी है, किन्तु श्वेताम्बर और यापनीय केवल १२ मानते हैं, इसलिए तिलोयपण्णत्ती की यह विशेषता उसे दिगम्बरग्रन्थ ही सिद्ध करती है।

९
नव अनुदिश मान्य

गेवेज्ज णवाणुद्दिस पहुडीओ होंति एक्करज्जूवो।
एवं उवरिमलोए रज्जुविभागो समुद्दिट्ठो॥ १/१६२॥

अनुवाद—"तत्पश्चात् एक राजू की ऊँचाई में नौ ग्रैवेयक, नौ अनुदिश और पाँच अनुत्तर विमान हैं। ऊर्ध्वलोक में इस प्रकार का विभाग कहा गया है।"

तिलोयपण्णत्ती की इस गाथा में नौ अनुदिश नामक नौ स्वर्गों का अस्तित्व स्वीकार किया गया है, जो श्वेताम्बरों और यापनीयों की मान्यता के विरुद्ध है। श्वेताम्बर मुनि उपाध्याय आत्माराम जी ने **तत्त्वार्थसूत्र-जैनागम-समन्वय** (पृ.११९) में लिखा है—"आगमग्रन्थों ने नव अनुदिशों का अस्तित्व नहीं माना है।" अतः यह भी तिलोयपण्णत्ती के दिगम्बरीय ग्रन्थ होने का एक प्रमाण है।

१०
अन्तरद्वीपों की संख्या ९६ मान्य

श्वेताम्बर-वाङ्मय में अन्तरद्वीपों की संख्या ५६ मान्य की गई है,[१४] किन्तु तिलोयपण्णत्ती में दिगम्बरमतानुसार ९६ का उल्लेख है। यथा, निम्नलिखित गाथा में लवणसमुद्र में विद्यमान ४८ द्वीपों का वर्णन किया गया है—

दीवा लवणसमुद्दे अडदाल कुमाणुसाण चउवीसं।
अब्भंतरम्मि भागे तेत्तियमेत्ताए बाहिरए॥ ४/२५१८॥

---

१२. 'अनेकान्त' (मासिक)/वर्ष २/किरण १०/१ अगस्त १९३९/सम्पादकीय टिप्पणी/पृ. ५४५।
१३. तत्त्वार्थसूत्र / विवेचनसहित / प्रस्तावना / ४/२०/ पा.टि.४ / पृ. १२०।
१४. परमश्रुत प्रभावक मण्डल, श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, अगास से ई० सन् १९९२ में प्रकाशित वर्तमान 'सभाष्य तत्त्वार्थाधिगमसूत्र' के अन्तर्गत तत्त्वार्थाधिगमभाष्य में ५६ अन्तरद्वीपों का

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

अनुवाद—"लवणसमुद्र में अड़तालीस कुमानुषद्वीप हैं। इनमें से चौबीस अभ्यन्तर भाग में और इतने ही (२४) बाह्य भाग में हैं।"

तिलोयपण्णत्ती की अधोलिखित गाथा में कालोदसमुद्रगत ४८ द्वीपों का कथन है—

धादइसंडदिसासुं तेत्तियमेत्ता वि अंतरा दीवा।
तेसुं तेत्तियमेत्ता कुमाणुसा होंति तण्णामा॥ ४/२५३०॥

अनुवाद—"धातकीखण्डद्वीप की दिशाओं (कालोदसमुद्र) में भी इतने (४८) ही अन्तरद्वीपों और उनमें रहनेवाले पूर्वोक्त नामों से युक्त कुमानुष हैं।"

इसका स्पष्टीकरण **मुनि श्री प्रमाणसागर जी** ने अधोलिखित वक्तव्य में किया है—"लवणसमुद्र में जम्बूद्वीप के तट पर चारों दिशाओं में चार, चारों विदिशाओं में चार और अन्तर्दिशाओं में आठ तथा भरत और ऐरावत क्षेत्र-सम्बन्धी दोनों विजयार्ध पर्वतों के दोनों छोरों के समीप एक-एक एवं हिमवान् और शिखरी पर्वत के दोनों छोरों पर एक-एक, इस प्रकार कुल (४+४+८+४+४)=२४ अन्तर्द्वीप हैं। इसी प्रकार २४-२४ अन्तर्द्वीप लवणसमुद्र के दूसरे तट और कालोद समुद्र के उभय तटों पर हैं। इस प्रकार कुल ४८+४८=९६ कुभोगभूमियाँ हैं। इनमें कुमानुष निवास करते हैं, इसलिए इन्हें कुभोगभूमि कहते हैं।" (जैनतत्त्वविद्या/पृ. ८६)।

श्वेताम्बरग्रन्थ **बृहत्क्षेत्रसमास** के लवणाब्धि-अधिकार का विवरण देते हुए माननीय पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री लिखते हैं—"इस अधिकार में अन्तरद्वीप छप्पन बतलाये हैं, जिनमें से अट्ठाईस द्वीप हिमालयपर्वतसम्बन्धी और २८ द्वीप शिखरीपर्वत-सम्बन्धी हैं। इनके नाम क्रमशः एकोरुक, आभाषिक, वैषाणिक, लाङ्गलिक आदि हैं।" (जै.सा.इ./भा.२/पृ.६५)। श्वेताम्बरसाहित्य में कालोदधि में ऐसे अन्तर्द्वीप नहीं माने गये हैं।" (जै.सा.इ./भा./पृ.२/६६)।

उल्लेख है—"**शिखरिणोऽप्येवमेवेत्यवं षट्पञ्चाशदिति।**" (३/१५/ पृ. १७९)। किन्तु सिद्धसेनगणी के समय में (विक्रम की ७वीं शती के अन्तिम पाद से लेकर ८वीं शती के मध्यभाग तक उपलब्ध तत्त्वार्थाधिगमभाष्य की प्रति में ९६ अन्तर द्वीपों का उल्लेख था। इस पर वृत्तिकार सिद्धसेन गणी ने रोष प्रकट करते हुए लिखा है कि यह कथन आर्षविरुद्ध है। जीवाभिगम आदि में अन्तरद्वीपों की संख्या ५६ ही बतलायी गयी है—"**एतच्चान्तर-द्वीपकभाष्यं प्रायो विनाशितं सर्वत्र कैरपि दुर्विदग्धैर्येन षण्णवतिरन्तरद्वीपका भाष्येषु दृश्यन्ते। अनार्षं चैतदध्यवसीयते जीवाभिगमादिषु षट्पञ्चाशदन्तरद्वीपकाध्ययनात्।**" तत्त्वार्थ-भाष्यवृत्ति ३/१५/पृ.२६७।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

अनुवाद—"लवणसमुद्र में अड़तालीस कुमानुषद्वीप हैं। इनमें से चौबीस अभ्यन्तर भाग में और इतने ही (२४) बाह्य भाग में हैं।"

तिलोयपण्णत्ती की अधोलिखित गाथा में कालोदसमुद्रगत ४८ द्वीपों का कथन है—

धादइसंडदिसासुं तेत्तियमेत्ता वि अंतरा दीवा।
तेसुं तेत्तियमेत्ता कुमाणुसा होंति तण्णामा॥ ४/२५३०॥

अनुवाद—"धातकीखण्डद्वीप की दिशाओं (कालोदसमुद्र) में भी इतने (४८) ही अन्तरद्वीपों और उनमें रहनेवाले पूर्वोक्त नामों से युक्त कुमानुष हैं।"

इसका स्पष्टीकरण **मुनि श्री प्रमाणसागर जी** ने अधोलिखित वक्तव्य में किया है—"लवणसमुद्र में जम्बूद्वीप के तट पर चारों दिशाओं में चार, चारों विदिशाओं में चार और अन्तर्दिशाओं में आठ तथा भरत और ऐरावत क्षेत्र-सम्बन्धी दोनों विजयार्ध पर्वतों के दोनों छोरों के समीप एक-एक एवं हिमवान् और शिखरी पर्वत के दोनों छोरों पर एक-एक, इस प्रकार कुल (४+४+८+४+४)=२४ अन्तर्द्वीप हैं। इसी प्रकार २४-२४ अन्तर्द्वीप लवणसमुद्र के दूसरे तट और कालोद समुद्र के उभय तटों पर हैं। इस प्रकार कुल ४८+४८=९६ कुभोगभूमियाँ हैं। इनमें कुमानुष निवास करते हैं, इसलिए इन्हें कुभोगभूमि कहते हैं।" (जैनतत्त्वविद्या/पृ. ८६)।

श्वेताम्बरग्रन्थ **बृहत्क्षेत्रसमास** के लवणाब्धि-अधिकार का विवरण देते हुए माननीय पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री लिखते हैं—"इस अधिकार में अन्तरद्वीप छप्पन बतलाये हैं, जिनमें से अट्ठाईस द्वीप हिमालयपर्वतसम्बन्धी और २८ द्वीप शिखरीपर्वत-सम्बन्धी हैं। इनके नाम क्रमशः एकोरुक, आभाषिक, वैषाणिक, लाङ्गलिक आदि हैं।" (जै.सा.इ./भा.२/पृ.६५)। श्वेताम्बरसाहित्य में कालोदधि में ऐसे अन्तर्द्वीप नहीं माने गये हैं।" (जै.सा.इ./भा./पृ.२/६६)।

उल्लेख है—"**शिखरिणोऽप्येवमेवेत्यवं षट्पञ्चाशदिति।**" (३/१५/ पृ. १७९)। किन्तु सिद्धसेनगणी के समय में (विक्रम की ७वीं शती के अन्तिम पाद से लेकर ८वीं शती के मध्यभाग तक उपलब्ध तत्त्वार्थाधिगमभाष्य की प्रति में ९६ अन्तर द्वीपों का उल्लेख था। इस पर वृत्तिकार सिद्धसेन गणी ने रोष प्रकट करते हुए लिखा है कि यह कथन आर्षविरुद्ध है। जीवाभिगम आदि में अन्तरद्वीपों की संख्या ५६ ही बतलायी गयी है—"**एतच्चान्तरद्वीपकभाष्यं प्रायो विनाशितं सर्वत्र कैरपि दुर्विदग्धैर्येन षण्णवतिरन्तरद्वीपका भाष्येषु दृश्यन्ते। अनार्षं चैतदध्यवसीयते जीवाभिगमादिषु षट्पञ्चाशदन्तरद्वीपकाध्ययनात्।**" तत्त्वार्थ-भाष्यवृत्ति ३/१५/पृ.२६७।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

पण्डित जी आगे लिखते हैं—"तिलोयपण्णत्ती से 'बृहत्क्षेत्रसमास' में द्वीपों का अवस्थान भी भिन्न रूप से बतलाया है। यह केवल ग्रन्थगत भेद नहीं है, किन्तु परम्परागत भेद है। दिगम्बरपरम्परा के ग्रन्थों में **तिलोयपण्णत्ती** के अनुसार कथन है और श्वेताम्बरपरम्परा के ग्रन्थों में **बृहत्क्षेत्र** के अनुसार कथन मिलता है।" (जै.सा.इ./भा./पृ.२/६५-६६)।

तिलोयपण्णत्ती का यह वैशिष्ट्य भी उसके दिगम्बरग्रन्थ होने का प्रमाण है।

११
काल की स्वतंत्रद्रव्य के रूप में मान्यता

श्वेताम्बरमत में **काल** स्वतन्त्र द्रव्य नहीं माना गया है। दिगम्बरमान्य तत्त्वार्थसूत्र में जहाँ '**कालश्च**' (५/३९) सूत्र है, वहाँ श्वेताम्बरमान्य तत्त्वार्थसूत्र में '**कालश्चेत्येके**' (५/३८) पाठ है, जिसका अर्थ है—'कोई आचार्य काल को भी द्रव्य कहते हैं।' इससे यह द्योतित किया गया है कि सूत्रकार स्वयं काल को स्वतंत्र द्रव्य नहीं मानते। उसके स्वतंत्र द्रव्य होने की मान्यता किन्हीं अन्य आचार्यों की है। यहाँ स्पष्टतः दिगम्बराचार्यों की ओर संकेत किया गया है। प्रसिद्ध श्वेताम्बर विद्वान् **पं० सुखलाल जी संघवी** ने ऐसा ही अभिप्राय अभिव्यक्त किया है। उन्होंने लिखा है—"काल किसी के मत से वास्तविक द्रव्य है, ऐसा सूत्र (त.सू./श्वे./५/३८) और उसके भाष्य का वर्णन दिगम्बरमत (त.सू.५/३९) के विरुद्ध है।" (त.सू./वि.स./प्रस्ता./पृ. १७)।

माननीय पं० फूलचन्द्र जी शास्त्री लिखते हैं—"तत्त्वार्थभाष्यकार ऐसा करते ('कालश्चेत्येके' सूत्र लिखते) हुए भी अन्य आचार्यों के मत से काल को द्रव्यरूप से स्वीकार करते हैं, स्वयं नहीं। यही कारण है कि उन्होंने **तत्त्वार्थभाष्य** में जहाँ-जहाँ द्रव्यों का उल्लेख किया है, वहाँ-वहाँ पाँच अस्तिकायों का ही उल्लेख किया है और लोक को पाँच अस्तिकायात्मक बतलाया है।[१५] श्वेताम्बर-आगमसाहित्य में छह द्रव्यों का निर्देश किया है अवश्य और एक स्थान पर तो तत्त्वार्थभाष्यकार भी छह द्रव्यों का उल्लेख करते हैं,[१६] परन्तु इससे वे काल को द्रव्य मानते ही हैं, यह नहीं कहा जा सकता। कारण यह है कि श्वेताम्बर-आगमसाहित्य में जहाँ भी छह द्रव्यों का नामनिर्देश किया है, वहाँ काल द्रव्य के लिए **अद्धासमय** शब्द प्रयुक्त हुआ

---

१५. क— "सर्वं पञ्चत्वमस्तिकायावरोधात्।" तत्त्वार्थाधिगमभाष्य/१/३५/पृ. ६५।
ख—"पञ्चास्तिकायसमुदायो लोकः।" तत्त्वार्थाधिगमभाष्य /३/६/पृ. १५९।
ग—"पञ्चास्तिकायात्मकम्।" तत्त्वार्थाधिगमभाष्य /९/७/पृ.४०३।
१६. "षट्त्वं षड्द्रव्यावरोधात्।" तत्त्वार्थाधिगमभाष्य १/३५/पृ. ६५।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

है, 'काल' शब्द नहीं। और 'अद्धासमय' शब्द का अर्थ वहाँ पर्याय ही लिया गया है, प्रदेशात्मक द्रव्य नहीं। तत्त्वार्थभाष्यकार ने भी इसी परिपाटी का निर्वाह किया है। उन्होंने तत्त्वार्थसूत्र के जिन सूत्रों में 'काल' शब्द आया है, वहाँ तो उनकी व्याख्या करते हुए 'काल' शब्द का ही उपयोग किया है, किन्तु जिन सूत्रों में 'काल' शब्द नहीं आया है और वहाँ 'काल' का उल्लेख करना उन्होंने आवश्यक समझा, तो 'काल' शब्द का प्रयोग न कर **अद्धासमय**[१७] शब्द का ही प्रयोग किया है। (स.सि./प्रस्ता./पृ.३५)।

इस तरह श्वेताम्बरपरम्परा में **काल** को स्वतंत्र द्रव्य के रूप में स्वीकार नहीं किया गया है, किन्तु तिलोयपण्णत्ती उसे स्वतन्त्रद्रव्य स्वीकार करती है। प्रमाणस्वरूप **तिलोयपण्णत्ती** की निम्नलिखित गाथाएँ द्रष्टव्य हैं—

छद्दव्व-णव-पयत्थे सुदणाणं दुमणि-किरण-सत्तीए।
देक्खंतु भव्वजीवा अण्णाण-तमेण संच्छण्णा॥ १/३४॥

अनुवाद—"(तिलोयपण्णत्ती ग्रन्थ की रचना इसलिए की गई है कि) अज्ञानान्धकार से आच्छादित भव्यजीव श्रुतज्ञानरूप सूर्य की किरणों से छह द्रव्य, और नौ पदार्थों को देख सकें।"

जीवा पोग्गलधम्माधम्मा काला इमाणि दव्वाणि।
सव्वं लोयायासं आधूइय पंच चिट्ठंति॥ १/९२॥

अनुवाद—"जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल, ये पाँच द्रव्य सम्पूर्ण लोकाकाश को व्याप्त कर स्थित हैं।"

फासरसगंधवण्णेहि विरहिदो अगुरुलहुगुणजुत्तो।
वट्टणलक्खणकलियं कालसरूवं इमं होदि॥ ४/२८१॥

अनुवाद—"स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण से रहित, अगुरुलघुत्वगुण से सहित तथा वर्तनालक्षण से युक्त होना 'काल' द्रव्य का स्वरूप है।"

कालस्स दो वियप्पा मुक्खामुक्खा हवंति एदेसुं।
मुक्खाधारबलेणं अमुक्खकालो पवट्टेदि॥ ४/२८२॥

अनुवाद—"काल के मुख्य (निश्चय) और अमुख्य (व्यवहार), ये दो भेद हैं। इनमें से मुख्यकाल के आधार से अमुख्यकाल की प्रवृत्ति होती है।"

---

१७. "कायग्रहणं प्रदेशावयवबहुत्वार्थमद्धासमयप्रतिषेधार्थं च।" तत्त्वार्थाधिगमभाष्य ५/१।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

बाहिरहेदू कहिदो णिच्छयकालो त्ति सव्वदरिसीहिं।
अब्भंतरं णिमित्तं णिय णिय दव्वेसु चेट्ठेदि॥ ४/२८५॥

अनुवाद—"सर्वज्ञदेव ने निश्चयकाल को सर्वपदार्थों के प्रवर्तने का बाह्य निमित्त कहा है। अभ्यन्तर निमित्त अपने-अपने द्रव्य में स्थित है।"

कालस्साणूभिण्णा अण्णोण्णपवेसणेण परिहीणा।
पुह पुह लोयायासे चेट्ठंते संचएण विणा॥ ४/२८६॥

अनुवाद—"काल के भिन्न-भिन्न अणु, एक-दूसरे में प्रवेश न करते हुए संचय के बिना लोकाकाश में पृथक्-पृथक् स्थित हैं।"

तिलोयपण्णत्ती की इन गाथाओं में काल को छह द्रव्यों के अन्तर्गत सम्पूर्ण लोकाकाश (लोकाकाश के प्रत्येक प्रदेश) में पृथक्-पृथक् स्थित रहनेवाला भिन्न-भिन्न अणुरूप स्वतंत्र द्रव्य माना गया है, जो केवल दिगम्बर-सिद्धान्त के अनुरूप है, श्वेताम्बर और श्वेताम्बर-आगमों के अनुयायी यापनीयों के सिद्धान्त के सर्वथा विरुद्ध है। अतः यह तिलोयपण्णत्ती के दिगम्बरग्रन्थ होने का स्पष्ट प्रमाण है।

१२
मोक्षमार्ग की चतुर्दश-गुणस्थानात्मकता

तिलोयपण्णत्ती में मोक्षमार्ग को चतुर्दश-गुणस्थानात्मक माना गया है अर्थात् यह माना गया है कि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्ररूप आध्यात्मिक विकास जब चौदहवें गुणस्थान-रूप चरम अवस्था में पहुँचता है, तब आत्मा को सिद्धत्व (मोक्ष) की प्राप्ति होती है। किस क्षेत्र का मनुष्य किस गुणस्थान तक आध्यात्मिक विकास कर सकता है, इसका निरूपण आचार्य यतिवृषभ **तिलोयपण्णत्ती** की अधोलिखित गाथाओं में करते हैं—

पण-पण-अज्जाखंडे भरहेरावदम्मि मिच्छगुणठाणं।
अवरे वरम्मि चोद्दस-परियंत कआइ दीसंति॥ ४/२९८०॥

अनुवाद—"भरत एवं ऐरावत क्षेत्र के भीतर पाँच-पाँच आर्यखण्डों में जघन्यरूप से मिथ्यात्व गुणस्थान और उत्कृष्टरूप से कदाचित् चौदह गुणस्थान तक पाये जाते हैं।"

पंचविदेहे सट्ठि-समण्णिद-सद-अज्जखंडए अवरे।
छग्गुणठाणे तत्तो चोद्दस-परियंत दीसंति॥ ४/२९८१॥

अनुवाद—"पाँच विदेहक्षेत्रों के भीतर एक सौ साठ आर्यखण्डों में जघन्यरूप से छह गुणस्थान और उत्कृष्ट रूप से चौदह गुणस्थान तक पाये जाते हैं।"

तात्पर्य यह है कि विदेहक्षेत्र में पहला, चौथा, पाँचवाँ, छठा, सातवाँ और तेरहवाँ, ये छह गुणस्थान निरन्तर पाये जाते हैं। शेष गुणस्थान सान्तर हैं। अतः जघन्यतः ये छह गुणस्थान ही हमेशा उपलब्ध होते हैं।

सव्वेसुं भोगभुवे दो गुणठाणाणि सव्वकालम्मि।
दीसंति चउ-वियप्पं सव्व-मिलिच्छम्मि मिच्छत्तं॥ ४/२९८२॥

अनुवाद—"सब भोगभूमिजों में सदा दो गुणस्थान (मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि) तथा उत्कृष्टरूप से चार गुणस्थान रहते हैं। सब म्लेच्छखण्डों में एक मिथ्यात्व गुणस्थान ही रहता है।"

विज्जाहरसेढीए तिगुणट्ठाणाणि सव्वकालम्मि।
पणगुणढाणा दीसइ छंडिदविज्जाण चोद्दसं ठाणं॥ ४/२९८३॥

अनुवाद—"विद्याधर-श्रेणियों में सर्वदा तीन गुणस्थान (मिथ्यादृष्टि, असंयत और देशसंयत) तथा (उत्कृष्ट रूप से) पाँच गुणस्थान होते हैं। विद्याएँ छोड़ देने पर वहाँ चौदह गुणस्थान भी होते हैं।"

ते वेदत्तयजुत्ता अवगदवेदा वि केइ दीसंति।
सयलकसाएहि जुदा अकसाया होंति केइ णरा॥ ४/२९८६॥

अनुवाद—"वे मनुष्य तीनों वेदों से युक्त होते हैं। परन्तु कोई मनुष्य (अनिवृत्तिकरण के अवेदभाग से लेकर) वेदरहित भी होते हैं। कषाय की अपेक्षा भी वे समस्त कषायों से युक्त होते हैं, किन्तु कोई (ग्यारहवें गुणस्थान से) कषायरहित भी होते हैं।"

इस प्रकार तिलोयपण्णत्ती में मोक्षमार्ग चतुर्दश-गुणस्थानात्मक कहा गया है, किन्तु श्वेताम्बर एवं यापनीय सम्प्रदायों में परतीर्थिक (जैनेतरलिंगी) भी मुक्ति का पात्र माना गया है अर्थात् मिथ्यादृष्टि-गुणस्थान में भी मोक्षप्राप्ति स्वीकार की गई है, जिससे सिद्ध है कि इन परम्पराओं में मोक्षमार्ग की चतुर्दशगुणस्थानात्मकता मान्य नहीं है। यह सैद्धान्तिक विरोध भी तिलोयपण्णत्ती को दिगम्बरग्रन्थ सिद्ध करता है।

१३
दिव्यध्वनि सर्वभाषात्मक

श्वेताम्बर-आगमों में कहा गया है कि भगवान् महावीर के उपदेश की भाषा अर्धमागधी थी—"**भगवं च णं अद्धमागहीए भासाए धम्ममाइक्खइ।**"[१८]

---

१८. समवायांग ३४/२२ (डॉ० सागरमल जैन अभिनन्दनग्रन्थ / पृ. २१)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

किन्तु **तिलोयपण्णत्ती** का कथन है कि भगवान् के उपदेश की भाषा में अठारह महाभाषाएँ, सात सौ क्षुद्रभाषाएँ तथा समस्त संज्ञी जीवों की अक्षर-अनक्षरात्मक भाषाएँ[१९] गर्भित होती हैं—

अट्ठरस महाभासा खुल्लयभासा सयाइ सत्त तहा।
अक्खरअणक्खरप्पय सण्णी जीवाण सयलभासाओ॥ ४/९१०॥

एदासिं भासाणं तालुव-दंतोट्ठ-कंठ-वावारे।
परिहरिय एक्ककालं भव्वजणे दिव्वभासित्तं॥ ४/९११॥

अनुवाद—"भगवान् अठारह महाभाषाओं, सात सौ क्षुद्रभाषाओं तथा संज्ञी जीवों की जो और भी अक्षर-अनक्षरात्मक भाषाएँ हैं, उनमें तालु, दन्त, ओष्ठ और कण्ठ के व्यापार से रहित होकर एक ही समय भव्यजनों को उपदेश देते हैं।"

इस तरह तिलोयपण्णत्तीकार यह नहीं मानते कि भगवान् महावीर के उपदेश की भाषा अर्धमागधी थी। अर्धमागधी तो अठारह महाभाषाओं और सात सौ क्षुद्रभाषाओं में से एक रही होगी। और वस्तुतः भगवान् इन सभी भाषाओं में उपदेश नहीं देते थे, अपितु उनके मुख से निकलनेवाली भाषा या ध्वनि इन सब भाषाओं में परिणमित हो जाती थी।[२०] यह परिणमन केवलज्ञान के ११ अतिशयों में से एक है।[२१] और उनके मुख से निकलनेवाली भाषा कौन सी थी, इसके विषय में तिलोयपण्णत्तीकार ने कुछ भी नहीं कहा है। उन्होंने बस यही कहा है कि भगवान् उपर्युक्त सभी भाषाओं में उपदेश देते हैं। यह कथन श्वेताम्बरों और उनके आगमों को प्रमाण माननेवाले यापनीयों के मत के विरुद्ध हैं। अतः यह तिलोयपण्णत्ती के दिगम्बरीय ग्रन्थ होने का अन्यतम प्रमाण है।

१४
चामर-प्रतिहार्य में चामरों की बहुलता

श्वेताम्बर विद्वान् श्री **मधुसूदन ढाकी** और श्री **जितेन्द्र शाह** ने **मानतुङ्गाचार्य और उनके स्तोत्र** नामक पुस्तिका में इस ओर ध्यान आकृष्ट किया है कि अष्ट प्रतिहार्यों

---

१९. क— "तव वागमृतं श्रीमत्सर्वभाषास्वभावकम्।" स्वयम्भूस्तोत्र / श्लोक ९७।
ख— "केरिसा सा? सव्वभासासरूवा।" जयधवला / क.पा. / भाग १ / गा.१ / पृ.११५।

२०. महापुराण (आदिपुराण) २३/६९-७४ (जयधवला / क.पा. / भा.१ / गा.१ / विशेषार्थ / पृ.११६-११७)।

२१. तिलोयपण्णत्ती ४ / ९१५।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

में जो चामर-प्रतिहार्य है, उसकी संख्या को लेकर दिगम्बर और श्वेताम्बर परम्पराओं में मान्यता-भेद है। श्वेताम्बरपरम्परा में दो ही चामर माने गये हैं, जब कि दिगम्बरपरम्परा में चामरसमूह या चौंसठ चामरों का उल्लेख है। **भक्तामरस्तोत्र** में '**कुन्दावदात-चलचामरचारुशोभम्**' (३०) इस पद्य में 'चामर' शब्द से 'दो चामर' अर्थ लेकर उन्होंने उसे श्वेताम्बराचार्यकृत सिद्ध करने की चेष्टा की है। देखिए—

"चामर प्रातिहार्य के सम्बन्ध में दिगम्बर-मान्यता में चामर प्रायः दो से अधिक संख्या में माना गया है। **कुमुदचन्द्र** ने चामरों के ओघ (समूह) की बात की है, तो **जिनसेन** ने आदिपुराण में चामरालि (चामरावली) एवं ६४ चामरों की बात कही है। भक्तामर में बहुलतादर्शक कोई इशारा न होने से, वहाँ **चामरयुग्म** ही अपेक्षित मानना ठीक होगा और यह हकीकत, स्तोत्रकार मूलतः उस (श्वेताम्बरीय) प्रणाली का अनुकरण कर रहा हो, ऐसा आभास कराती है। दो चामरों की मान्यतावाली परिपाटी दिगम्बर नहीं है।"[२२]

और इसकी पादटिप्पणी में उक्त विद्वान् कहते हैं—"कहीं-कहीं दिगम्बर-मान्य कृतियों में भी दो चामर की बात कही गई हो, तो भी वे रचनाएँ मूलतः दिगम्बर थीं या यापनीय, इसका भी निर्णय होना जरूरी है।"[२३]

यद्यपि **कुन्दावदातचलचामरचारुशोभम्** इस पंक्ति में चामर के साथ संख्या-वाचकविशेषण न होने से 'दो चामर' अर्थ किसी भी प्रकार ग्रहण नहीं किया जा सकता, इसके विपरीत समास में विभक्तिलोप हो जाने से और चामर की संख्या एक न होने से 'चामर' शब्द बहुवचन का ही प्रतिपादन करता है, तथापि विद्वद्द्वय का यह कथन सत्य है कि श्वेताम्बरपरम्परा में चामरयुगल ही मान्य है और दिगम्बरपरम्परा में चामरसमूह या चौसठ चामर। यथा—

सीहासणे णिसण्णो रत्तासोगस्स हेट्ठतो भगवं।
सक्को सहेमजालं सयमेव य गेण्हते छत्तं॥ १९८५॥

दो होन्ति चामराओ सेताओ मणियएहिं दण्डेहिं।
ईसाणचमरसहिता धरेन्ति णातवच्छस्स॥ १९८६॥

श्वेताम्बरग्रन्थ **विशेषावश्यकभाष्य** की इन गाथाओं में दो चामरों का ही वर्णन है।

तथा दिगम्बराचार्य समन्तभद्र ने **स्तुतिविद्या** (जिनशतक) के निम्न पद्य में बहुवचनात्मक 'चामरैः' पद का प्रयोग किया है—

---

२२. मानतुङ्गाचार्य और उनके स्तोत्र/पृ. १०५।
२३. वही/पृ. १०७/ पा.टि.७।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

दिव्यैर्ध्वनिसितच्छत्रचामरैर्दुन्दुभिः स्वनैः।
दिव्यैर्विनिर्मित-स्तोत्र-श्रमदर्दुरिभिर्जनैः॥ ६॥

आदिपुराण में भी "**यक्षैरुदक्षिप्यत चामराली**" (२३/५५) तथा "**धीन्द्राश्चतुःषष्टिमुदाहरन्ति**" (२३/५९) इन उक्तियों के द्वारा चामरों की बहुलता एवं उनकी ६४ संख्या का प्रतिपादन किया गया है।

आचार्य यतिवृषभ ने भी तिलोयपण्णत्ती में ६४ चामरों का वर्णन किया है—

चउसट्ठि-चामरेहिं, मुणाल-कुंदेंदु-संख-धवलेहिं।
सुरकर-पलव्विदेहिं विज्जिज्जंता जयंतु जिणा॥ ४/९३६॥

यह भी तिलोयपण्णत्ती के दिगम्बरीय ग्रन्थ होने का एक प्रमाण है। उक्त दोनों श्वेताम्बर विद्वानों ने भी इन विशेषताओं के कारण तिलोयपण्णत्ती को दिगम्बर-परम्परा का ही ग्रन्थ बतलाया है। यह उनके निम्नलिखित अनुच्छेद १५ में उद्धृत वचनों से सूचित होता है।

१५

तीर्थंकर के नभोयान का उल्लेख

पूर्वोक्त श्वेताम्बर विद्वद्द्वय ने श्वेताम्बर और दिगम्बर मान्यताओं में एक अन्तर और भी निर्दिष्ट किया है। वह नभोयान या आकाशगमन से सम्बन्धित है। उनके अनुसार श्वेताम्बरपरम्परा में भगवान् का आकाशगमन नहीं माना गया है, जबकि दिगम्बरपरम्परा मानती है। और इस भेद के आधार पर उन्होंने भक्तामरस्तोत्र के '**उन्निद्रहेमवनपङ्कजपुञ्जकान्ति**' इस ३६वें पद्य में नभोयान का वर्णन न मानकर उसे श्वेताम्बराचार्यकृत माना है। उक्त विद्वद्द्वय लिखते हैं—

"(भक्तामर) स्तोत्र के ३२वें (दिगम्बरपाठ के ३६वें) पद्य में जिनेन्द्र का कमल-विहार उल्लिखित है। **दिगम्बरसम्प्रदाय** में **तिलोयपण्णत्ती** और समन्तभद्रकृत **आप्त-मीमांसा** आदि प्राचीन रचनाओं में **जिन** का नभोविहार होना बतलाया है[२४] और समन्तभद्र के **बृहत्स्वयंभूस्तोत्र** में **जिनपद्मप्रभ** की स्तुति में एक ही पद्य में दोनों प्रकार के विहार (सन्दर्भानुसार) सूचित हैं। भक्तामर में **नभोयान** का उल्लेख है ही नहीं, वहाँ यह बात कहने के लिए चार पदयुक्त पद्य में कहीं न कहीं अवकाश

---

२४. देवागम-नभोयान-चामरादिविभूतयः।
मायाविष्वपि दृश्यन्ते नातस्त्वमसि नो महान्॥ १॥ आप्तमीमांसा।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

होते हुए भी। यदि स्तोत्रकार दिगम्बर थे, तो इस महत्त्वपूर्ण बात का जिक्र क्यों नहीं किया?''[२५]

विद्वद्द्वय ने नभोविहार और कमलविहार को अलग-अलग मान लिया है, जबकि ये अलग-अलग नहीं है। आकाश में गमन करते समय ही देवगण भगवान् के चरणों के नीचे कमल की रचना करते हैं, जैसा कि **आप्तमीमांसा** की **'देवागमनभोयान'** इस कारिका (१) की आचार्य वसुनन्दी कृत निम्नलिखित व्याख्या से स्पष्ट है-''**नभसि गगने हेममयाम्भोजोपरि यानं नभोयानम्**' तथा **स्वयंभूस्तोत्र** के पद्मप्रभजिन-स्तवन के निम्न पद्य में भी यही बात कही गई है—

नभस्तलं पल्लवयन्निव त्वं सहस्रपत्राम्बुजगर्भचारैः।
पादाम्बुजैः पातितमारदर्पो भूमौ प्रजानां विजहर्थ भूत्यै॥ २९॥

इस तरह नभोविहार और कमलविहार अभिन्न हैं, अतः विद्वद्द्वय का भक्तामरस्तोत्र के उपर्युक्त पद्य में नभोयान का कथन न मानना उचित नहीं है, तथापि उनका यह मन्तव्य समीचीन है कि श्वेताम्बरमत में नभोयान की मान्यता नहीं है, जबकि दिगम्बरमत में है। **तिलोयपण्णत्ती** में तीर्थंकर के आकाशगमन का स्पष्ट शब्दों में उल्लेख है—

जोयणसदमज्जादं सुभिक्खदा चउदिसासु णियठाणा।
णहयल-गमणमहिंसा भोयण-उवसग्गपरिहीणा॥ ४/९०८॥

इस गाथा में **णहयलगमण** (नभतलगमन) को केवलज्ञान के ग्यारह अतिशयों में से एक बतलाया गया है। यह स्पष्टतः दिगम्बरपरम्परा का अनुसरण है, जो श्वेताम्बर और यापनीय परम्पराओं के विरुद्ध है। यह **तिलोयपण्णत्ती** के **दिगम्बरपरम्परा** का ग्रन्थ होने का एक अन्य प्रमाण है। उपर्युक्त श्वेताम्बर विद्वद्द्वय ने भी चौसठ चामर, भगवान् के आकाश गमन आदि के उल्लेख से तिलोयपण्णत्ती को दिगम्बरसम्प्रदाय का ग्रन्थ माना है।

१६
कुन्दकुन्द की गाथाओं का संग्रहण एवं अनुकरण

आचार्य यतिवृषभ ने कुन्दकुन्द के समयसार, प्रवचनसार आदि ग्रन्थों की अनेक गाथाएँ तिलोयपण्णत्ती में ग्रहण की हैं तथा कई गाथाओं के अंश लेकर नई गाथाएँ रची हैं। इससे ज्ञात होता है कि यतिवृषभ आचार्य कुन्दकुन्द की आध्यात्मिक विचारधारा

---

२५. मानतुङ्गाचार्य और उनके स्तोत्र/पृष्ठ १०५।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

से बहुत प्रभावित हैं, न केवल विचार-धारा से अपितु उनकी भाषा एवं शैली से भी। (देखिये, अध्याय १० / प्रकरण १ / शीर्षक ५.२)।

तिलोयपण्णत्ती में प्रतिपादित ये सभी सिद्धान्त एवं कुन्दकुन्द की गाथाओं का संग्रहण यापनीयमत के विरुद्ध हैं। अतः इन प्रमाणों से तिलोयपण्णत्ती का यापनीयग्रन्थ होना असिद्ध हो जाता है और सिद्ध होता है कि यह दिगम्बरपरम्परा का ग्रन्थ है।

✧✧✧

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

द्वितीय प्रकरण

यापनीयपक्षधर हेतुओं की असत्यता एवं हेत्वाभासता

सवस्त्रमुक्तिनिषेध, स्त्रीमुक्तिनिषेध, गृहस्थमुक्तिनिषेध, अन्यतीर्थिकमुक्तिनिषेध, केवलि-भुक्तिनिषेध और अट्ठाईस मूलगुणविधान, इनमें से एक भी सिद्धान्त की उपस्थिति तिलोयपण्णत्ती को दिगम्बरग्रन्थ सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है, फिर इसमें तो ये सब के सब मौजूद हैं। ये सिद्धान्त यापनीयमत-विरुद्ध होने से यापनीयग्रन्थ के प्रतिलक्षण हैं। इसलिए इनकी उपस्थिति में अन्य कोई भी तथ्य तिलोयपण्णत्ती को यापनीयग्रन्थ सिद्ध नहीं कर सकता। इस उद्देश्य से जो भी हेतु प्रस्तुत किया जायेगा उसका या तो अस्तित्व ही नहीं होगा या उसमें हेतु का लक्षण घटित नहीं होगा, अत एव अहेतु या हेत्वाभास होगा। अतः यापनीयपक्षधर ग्रन्थलेखक डॉ० सागरमल जी जैन ने तिलोयपण्णत्ती को यापनीयग्रन्थ सिद्ध करने के लिए जितने हेतु प्रस्तुत किये हैं, वे सब इसी प्रकार के हैं अर्थात् असत्य या हेत्वाभास हैं। यहाँ उनकी असत्यता एवं हेत्वाभासता के प्रमाण प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

१

कसायपाहुडचूर्णि एवं यतिवृषभ यापनीय नहीं

यापनीयपक्ष

विषयवस्तु एवं शैली की दृष्टि से अर्धमागधी आगमों और आगमिक व्याख्याओं के निकट होने से **कसायपाहुडचूर्णि** यापनीयपरम्परा का ग्रन्थ है। अतः उसके रचयिता यतिवृषभ भी यापनीय हैं। इसलिए उनके द्वारा रचित तिलोयपण्णत्ती भी यापनीयपरम्परा का ग्रन्थ है। (जै.ध.या.स./ पृ. १११)।

दिगम्बरपक्ष

तिलोयपण्णत्ती में प्रतिपादित यापनीयमत-विरुद्ध सिद्धान्तों से सिद्ध है कि उसके कर्त्ता यतिवृषभ यापनीय-आचार्य नहीं हैं, अपितु दिगम्बर हैं। अतः उनके द्वारा रचित **कसायपाहुड-चूर्णिसूत्र** भी यापनीयपरम्परा का ग्रन्थ नहीं है। इसलिए उसके रचायिता यतिवृषभ भी यापनीय नहीं हैं। अतः तिलोयपण्णत्ती को यापनीयग्रन्थ सिद्ध करने के लिए उसके रचयिता यतिवृषभ को यापनीय मानने का हेतु असत्य है। इससे सिद्ध है कि तिलोयपण्णत्ती यापनीयग्रन्थ नहीं है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि विषयवस्तु एवं शैली की दृष्टि से अर्धमागधी-आगमों के निकट होना यापनीयग्रन्थ का लक्षण या हेतु नहीं है।

२

दिगम्बरों में कसायपाहुडचूर्णि का लेखन

यापनीयपक्ष

दिगम्बरों में कोई चूर्णि नहीं लिखी गई, अतः कसायपाहुड पर रचित चूर्णिसूत्र यापनीयमत के ही होंगे। इसलिए उसके कर्त्ता यतिवृषभ यापनीय हैं। अतः उनके द्वारा रचित तिलोयपण्णत्ती यापनीयग्रन्थ है। (जै.ध.या.स./पृ.११४)।

दिगम्बरपक्ष

ऊपर सिद्ध किया जा चुका है कि यतिवृषभ दिगम्बर हैं। अतः उनके द्वारा रचित कसायपाहुडचूर्णि भी दिगम्बरग्रन्थ है। अतः 'दिगम्बरों में कोई चूर्णि नहीं रची गई' यह मान्यता असत्य है अर्थात् प्रस्तुत किया गया हेतु असत्य है। इससे स्पष्ट है कि तिलोयपण्णत्ती यापनीयग्रन्थ नहीं है।

३

उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थ-परम्परा कपोलकल्पित

यापनीयपक्ष

उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थपरम्परा के **आर्यमंक्षु** और **नागहस्ती** से कसाय-पाहुड का ज्ञान उत्तराधिकार में बोटिकों (यापनीयों) को ही प्राप्त हो सकता है, दक्षिण-भारतीय दिगम्बरों को नहीं। इसलिए यतिवृषभ बोटिक (यापनीय) थे। (जै.ध.या.स./पृ.११४)।

दिगम्बरपक्ष

द्वितीय अध्याय के तृतीय प्रकरण में सिद्ध किया जा चुका है कि उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थपरम्परा का अस्तित्व ही नहीं था, इसलिए आर्यमंक्षु और नागहस्ती भी उस परम्परा के आचार्य नहीं थे। इसलिए कसायपाहुड भी उसमें नहीं रचा गया था। इसलिए श्वेताम्बर और यापनीय सम्प्रदाय भी उससे उद्भूत नहीं हुए थे। इसलिए कसायपाहुड का ज्ञान भी उस परम्परा से उत्तराधिकार में यापनीयों को प्राप्त नहीं हुआ था। इसलिए यतिवृषभ भी यापनीय नहीं थे। इसलिए उनके द्वारा रचित तिलोय-पण्णत्ती भी यापनीयग्रन्थ नहीं है। अतः वह दिगम्बरग्रन्थ है। इस प्रकार उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थपरम्परावाला हेतु तथा उस पर आधारित अन्य सभी हेतु असत्य हैं, इससे सिद्ध है कि तिलोयपण्णत्ती यापनीयग्रन्थ नहीं है।

४

शिवार्य दिगम्बर थे

यापनीयपक्ष

शिवार्य ने भगवती-आराधना में **सर्वनन्दी** को गुरु कहा है। उन्हीं सर्वनन्दी का उल्लेख यतिवृषभ ने तिलोयपण्णत्ती में किया है। शिवार्य यापनीयसंघ के थे, इसलिए उनके गुरु का उल्लेख करनेवाले यतिवृषभ भी यापनीसंघ के होंगे। (जै.ध.या.स./ पृ. ११४)।

दिगम्बरपक्ष

भगवती-आराधना में यापनीयमत विरोधी सिद्धान्तों का प्रतिपादन है, यह सोदाहरण निरूपित किया जा चुका है। अतः उसके कर्त्ता शिवार्य यापनीय नहीं, दिगम्बर थे। अतः उन्हें यापनीय मानने का हेतु मिथ्या है। इससे सिद्ध है कि यतिवृषभ यापनीय नहीं थे।

५

नाम के साथ 'यति' शब्द का प्रयोग यापनीय होने का लक्षण नहीं

यापनीयपक्ष

यतिवृषभ के नाम के पहले **यति** शब्द जुड़ा हुआ है, जो यापनीय मुनियों की उपाधि है, जैसे '**यतिग्रामाग्रणी पाल्यकीर्ति शाकटायन।**' अतः वे यापनीय थे। (जै.ध.या.स./पृ. ११४-११५)।

दिगम्बरपक्ष

यतिग्रामाग्रणी में **यति** शब्द नाम के पहले नहीं, अपितु उपाधि के पहले जुड़ा हुआ है। और ऐसी उपाधि अन्य किसी भी यापनीय साधु या आचार्य के साथ जुड़ी नहीं मिलती, जैसे अर्ककीर्ति, जिननन्दी, रविचन्द्र, शुभचन्द्र आदि के साथ।[२६] इसके अतिरिक्त दिगम्बरजैनग्रन्थ **न्यायदीपिका** के कर्त्ता **अभिनवधर्मभूषणयति**[२७] (१४ वीं

---

२६. डॉ. ए. एन. उपाध्ये : 'जैनधर्म के यापनीय संघ पर कुछ और प्रकाश'/ 'अनेकान्त' (मासिक)/ महावीर निर्वाण विशेषांक, १९७५/पृष्ठ २४७।

२७. इति श्रीपरमार्हताचार्य-धर्मभूषण-यतिविरचितायां न्यायदीपिकायां---।'' न्यायदीपिका/ प्रमाणसामान्य-लक्षण/प्रथम प्रकाश/ पृष्ठ २२।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

शती ई०) के साथ भी **यति** उपाधि प्रयुक्त है। अतः **यति** शब्द यापनीय आचार्यों की असाधारण उपाधि नहीं थी। इसलिए यह यापनीय होने का लक्षण या हेतु नहीं है, अपितु साधारणानैकान्तिक हेत्वाभास है। इससे सिद्ध है कि 'यतिवृषभ' नाम में 'यति' शब्द का योग होते हुए भी, वे यापनीय नहीं थे।

६

स्त्रीमुक्त्यादि-निषेध का अनुल्लेख यापनीयग्रन्थ का लक्षण नहीं

यापनीयपक्ष

यतिवृषभ के चूर्णिसूत्रों में स्त्रीमुक्ति और केवलिभुक्ति का निषेध नहीं है, इसलिए यतिवृषभ यापनीय हैं। (जै.ध.या.स./पृ.११५)।

दिगम्बरपक्ष

किसी ग्रन्थ में स्त्रीमुक्ति और केवलिभुक्ति के निषेध का उल्लेख न होना यापनीयग्रन्थ का लक्षण नहीं है, अपितु इनका प्रतिपादन होना यापनीयग्रन्थ का लक्षण है। कुन्दकुन्द के **समयसार** में स्त्रीमुक्ति और केवलिभुक्ति के निषेध का कोई प्रकरण नहीं है, फिर भी वह यापनीयग्रन्थ नहीं है। अतः स्त्रीमुक्ति आदि के निषेध का उल्लेख न होने का धर्म दिगम्बरग्रन्थों में भी उपलब्ध होने से वह यापनीयग्रन्थ होने का हेतु (लक्षण) नहीं है, अपितु साधारणानैकान्तिक हेत्वाभास (अहेतु) है। इससे सिद्ध है कि स्त्रीमुक्ति आदि के निषेध का उल्लेख न होने पर भी यतिवृषभ के चूर्णिसूत्र यापनीयकृति नहीं हैं।

७

न शिवार्य यापनीय थे, न यतिवृषभ

यापनीयपक्ष

शिवार्य ने भगवती-आराधना में यतिवृषभ का उल्लेख **गणी** शब्द से[२८] तथा अपराजितसूरि ने विजयोदयाटीका में **यतिवृषभ** नाम से किया है। ये दोनों यापनीय थे, इसलिए इनके द्वारा उल्लिखित होने से यतिवृषभ भी यापनीय थे। (जै.ध.या.स./पृ. ११५)।

---

२८. अहिमारएण णिवदिम्मि मारिदे गहिदसमणलिंगेण।
उट्ठाहपसमणत्थं सत्थग्गहणं अकासि गणी॥ २०६९॥ भगवती-आराधना।

दिगम्बरपक्ष

भगवती-आराधना और **अपराजितसूरि : दिगम्बराचार्य** नामक १३ वें और १४वें अध्यायों में सप्रमाण सिद्ध किया गया है कि न तो 'भगवती-आराधना' के कर्त्ता शिवार्य यापनीय थे, न उसके टीकाकार अपराजितसूरि। ये दोनों दिगम्बर थे। अतः यदि यापनीय होने की स्थिति में इनके द्वारा उल्लिखित होने से यतिवृषभ यापनीय सिद्ध हो सकते थे, तो यह संभावना निरस्त हो जाती है। और यापनीयपक्षधर विद्वान् के उपर्युक्त तर्क से वे दिगम्बर सिद्ध होते हैं।

किन्तु , जिस '**अहिमारएण**' इत्यादि गाथा (क्र.२०६९) में **गणी** शब्द आया है, उसकी अपराजितसूरि ने टीका ही नहीं की है। क्रमांक २०६७ से २०७१ तक की गाथाओं के उपसंहाररूप में केवल इतना लिखा है—"**एवं पण्डितमरणं सविकल्पं सविस्तरं व्यावर्णितम्। वक्ष्यामि बालपण्डितमरणमित ऊर्ध्वं संक्षेपेण।**" (भ.आ./ पृ. ८८७)। इसमें यतिवृषभ शब्द का उल्लेख ही नहीं है। अतः न तो शिवार्य के 'गणी' शब्द के प्रयोग से यह सिद्ध होता है कि उससे उन्होंने 'यतिवृषभ' का संकेत किया है और न अपराजितसूरि की टीका से। अतः शिवार्य और अपराजितसूरि के द्वारा यतिवृषभ के उल्लेख किये जाने का हेतु विद्यमान ही नहीं है। इस तरह भी सिद्ध है कि यतिवृषभ यापनीय नहीं थे।

८

'गणी' शब्द यतिवृषभ का सूचक नहीं

यापनीयपक्ष

भगवती-आराधना के उल्लेखानुसार यतिवृषभ की मृत्यु उत्तरभारत के श्रावस्तीनगर में हुई थी। उत्तरभारत बोटिकों या यापनीयों का केन्द्र था, इसलिए यतिवृषभ यापनीय थे। (जै.ध.या.स./पृ. ११५)।

दिगम्बरपक्ष

यह हेतु भी 'भगवती-आराधना' की उपर्युक्त गाथा २०६९ में प्रयुक्त **गणी** शब्द को यतिवृषभ का सूचक मानने के आधार पर कल्पित किया गया है। किन्तु जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया गया है, 'गणी' शब्द यतिवृषभ का सूचक है ही नहीं। इससे सिद्ध है कि उपर्युक्त हेतु असत्य है। इसलिए हेतु के अभाव में यतिवृषभ का यापनीय होना असिद्ध है।

९

आगमविच्छेदक्रम न प्रक्षिप्त, न यापनीयकथित

यापनीयपक्ष

डॉ० सागरमल जी लिखते हैं कि तिलोयपण्णत्ती में जो यापनीयमत के विरुद्ध आगम-विच्छेद का क्रम दिया गया है, वह प्रक्षिप्त है, क्योंकि पं० फूलचन्द्र जी सिद्धान्त-शास्त्री ने तिलोयपण्णत्ती में प्रक्षेपों का होना स्वीकार किया है। ''दूसरे, **मुझे ऐसा लगता है** कि जब यापनीयसंघ में अध्ययन-अध्यापन की प्रवृत्ति शिथिल हो गयी, अपनी परम्परा में निर्मित ग्रन्थों से ही उनका काम चलने लगा, तभी आचार्यों द्वारा आगमों के क्रमिक उच्छेद की बात कही जाने लगी।'' (जै.ध.या.स./पृ. ११६)।

दिगम्बरपक्ष

१. **'मुझे ऐसा लगता है'** इन शब्दों से स्पष्ट है कि यापनीयपक्षधर विद्वान् ने आगम-विच्छेद की बात प्रचलित कर देने का जो हेतु बतलाया है, वह उन्होंने स्वबुद्धि से कल्पित किया है, उनके पास इसका कोई प्रमाण नहीं है। और इस दूसरे विकल्प को सोचने से सिद्ध है कि उन्हें पहले (प्रक्षेपवाले) विकल्प में पक्का भरोसा नहीं है, क्योंकि उसका भी उनके पास कोई प्रमाण नहीं है। इस तरह उन्होंने तिलोयपण्णत्ती में यापनीयमत-विरुद्ध उल्लेख को निरस्त करने के लिए जो दो वैकल्पिक हेतु सोचे हैं, वे स्वयं एक-दूसरे को निरस्त कर देते हैं। इस तरह न तो यह सिद्ध हो पाता है कि आगमविच्छेद के क्रम का उल्लेख प्रक्षिप्त है, और न यह कि यापनीय भी झूठमूठ आगमविच्छेद की बात करने लगे थे।

२. पं० फूलचन्द्र जी सिद्धान्तशास्त्री ने अपने लेख में तिलोयपण्णत्ती के जिन अंशों को प्रक्षिप्त कहा है, उनमें श्रुतविच्छेदवाला अंश शामिल नहीं है।[२९] उन्होंने केवल तिलोयपण्णत्ती के पहले महाधिकार की ७वीं गाथा से लेकर ८७ वीं गाथा तक जो मंगल, कारण, हेतु, प्रमाण, नाम और कर्त्ता से सम्बन्धित वर्णन है, उसे षट्खण्डागम के सत्प्ररूपणा खण्ड की धवलाटीका पर आधारित माना है।[३०] उन्होंने यह भी माना है कि धवलाटीका का कुछ गद्यभाग भी तिलोयपण्णत्ती में ज्यों का त्यों ले लिया गया है।[३१] इस आधार पर पण्डित जी ने वर्तमान तिलोयपण्णत्ती को धवलाटीका के

---

२९. देखिए, पं. फूलचन्द्र जी सिद्धान्तशास्त्री का लेख : ''वर्तमान तिलोयपण्णत्ति और उसके रचनाकाल आदि का विचार'' ('जैन सिद्धान्त भास्कर'/भाग ११/किरण १, जून, १९४४)।

३०. वही/पृ. ७१।

३१. वही/पृ. ७३।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

बाद की रचना सिद्ध करने की चेष्टा की है। किन्तु उन्होंने आगमविच्छेद-प्रतिपादक गाथाओं (४/१४८८-१५०४) को प्रक्षिप्त स्वीकार नहीं किया। तथा उन्होंने अपने लेख में तिलोयपण्णत्ती के जिन अंशों को धवला से प्रक्षिप्त या संगृहीत माना है, उन्हें **पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार** ने तिलोयपण्णत्ती से ही धवला में संगृहीत सिद्ध किया है।[३२] अतः प्रमाण के अभाव में उक्त गाथाओं को प्रक्षिप्त नहीं माना जा सकता। तात्पर्य यह कि आगमविच्छेद-प्रतिपादक गाथाओं को प्रक्षिप्त मानने का हेतु असत्य है।

३. यदि आगमविच्छेद-प्रतिपादक गाथाओं को प्रक्षिप्त मान लिया जाय, तो भी यह सिद्ध नहीं होता कि तिलोयपण्णत्ती यापनीयग्रन्थ है, क्योंकि उसमें सवस्त्रमुक्ति, स्त्रीमुक्ति, केवलिभुक्ति आदि सभी यापनीयमतों का निषेध है, जिसके प्रमाण पूर्व में प्रस्तुत किये जा चुके हैं।

४. और यदि यह भी मान लिया जाय कि यापनीय भी आगमविच्छेद मानने लगे थे, तो भी उसमें उपर्युक्त यापनीय-मान्यताओं का निषेध होने से तिलोयपण्णत्ती का यापनीयग्रन्थ सिद्ध होना असम्भव है।

५. यापनीयों ने आगमविच्छेद स्वीकार भी नहीं किया है, क्योंकि यापनीय आचार्य पाल्यकीर्ति शाकटायन ने स्त्रीमुक्ति के समर्थन में **मथुरागम** को प्रमाणरूप में उद्धृत किया है।[३३]

६. यह कथन भी प्रामाणिक नहीं है कि जब यापनीयों का अपनी परम्परा में निर्मित ग्रन्थों से काम चलने लगा, तब उन्होंने आगमों को विच्छिन्न घोषित कर दिया, क्योंकि यापनीयपरम्परा में काम चलाने योग्य ग्रन्थों के निर्माण का कोई प्रमाण ही नहीं है। यापनीयों के केवल चार ग्रन्थों के नाम उपलब्ध होते हैं, जैसे **यापनीयतन्त्र, स्त्रीनिर्वाणप्रकरण, केवलिभुक्तिप्रकरण** एवं **शाकटायनव्याकरण**। कुछ विद्वानों ने भगवती-आराधना, मूलाचार आदि को यापनीयग्रन्थ माना है, किन्तु पूर्व में सिद्ध किया जा चुका है कि वे दिगम्बराचार्यों द्वारा रचित हैं। यापनीय तो अन्त तक श्वेताम्बरग्रन्थों से ही काम चलाते रहे, यह नौवीं शताब्दी ई० में हुए पाल्यकीर्ति शाकटायन के उपर्युक्त उल्लेख से सिद्ध है। स्वयं श्वेताम्बर विद्वानों ने स्वीकार किया है कि यापनीय श्वेताम्बर-आगम को प्रमाण मानते थे।

---

३२. देखिए, पं. जुगलकिशोर मुख्तार-कृत 'पुरातन जैन वाक्य सूची' की प्रस्तावना में (ग) 'एक नई विचारधारा और उसकी जाँच।' (पृ. ४१-५७)।

३३. अष्टशतमेकसमये पुरुषाणामादिरागमः (माहुरागमे) सिद्धिः (सिद्धम्)।
स्त्रीणां न मनुष्ययोगे गौणार्थो मुख्यहानिर्वा ॥ ३४॥ स्त्रीनिर्वाणप्रकरण।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

७. तिलोयपण्णत्ती में जिन आचार्यों के स्वर्गस्थ होने पर श्रुत का क्रमिक विच्छेद बतलाया है, वे सब दिगम्बराचार्य हैं, यह हरिवंशपुराण, धवला आदि ग्रन्थों तथा नन्दिसंघ की प्राकृतपट्टावली से प्रमाणित है। उनमें से श्रुतकेवली भद्रबाहु को छोड़कर किसी भी आचार्य का नाम श्वेताम्बर या यापनीय सम्प्रदाय के ग्रन्थों, पट्टावलियों या शिलालेखों में उपलब्ध नहीं होता। इससे सिद्ध है कि तिलोयपण्णत्ती में दिगम्बरमान्य श्रुतविच्छेदक्रम का ही उल्लेख है, यापनीयमान्य श्रुतविच्छेदक्रम का नहीं।

८. डॉ० सागरमल जी का कथन है कि "श्वेताम्बरपरम्परा के आगमिक-प्रकीर्णक **तीर्थोद्गालिक** में भी आगमों के उच्छेदक्रम का उल्लेख है। जब आगमों के होते हुए भी श्वेताम्बरपरम्परा उनके विच्छेद की बात कर सकती है, तो यापनीय आचार्यों द्वारा उनके विच्छेद की बात करना आश्चर्यजनक भी नहीं है।" (जै.ध.या.स./ पृ. ११७)।

डॉक्टर सा० का यह 'तर्क' संगत हो सकता था, यदि यापनीयों ने कहीं आगमविच्छेद की बात की होती। किन्तु उन्होंने यह बात कहीं की ही नहीं है, तब उसकी 'तीर्थोद्गालिक' के उल्लेख से तुलना करने और उसके आश्चर्यजनक न होने की टिप्पणी करने का कोई औचित्य ही नहीं है, जैसे बन्ध्यापुत्र के नाम पर कोई टिप्पणी करना औचित्यपूर्ण नहीं है। तिलोयपण्णत्ती में यापनीयमत-विरुद्ध अनेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन है। इससे सिद्ध है कि तिलोयपण्णत्ती यापनीयग्रन्थ नहीं, अपितु दिगम्बरग्रन्थ है। यह इस बात का प्रमाण है कि उसमें वर्णित आगमविच्छेदक्रम दिगम्बरों का ही मत है, यापनीयों का नहीं।

९. यदि यह माना जाय कि दिगम्बरों के अतिरिक्त श्वेताम्बरों और यापनीयों को भी आगमविच्छेद मान्य है तो आगमविच्छेद के उल्लेख के आधार पर तिलोयपण्णत्ती दिगम्बरग्रन्थ भी सिद्ध होगा, श्वेताम्बरग्रन्थ भी और यापीनयग्रन्थ भी, केवल यापनीयग्रन्थ सिद्ध नहीं हो सकता। अतः तिलोयपण्णत्ती को यापनीयग्रन्थ सिद्ध करने के लिए यह मानना अयुक्तिसंगत है कि यापनीय भी आगमविच्छेद मानने लगे थे। इस तरह यह हेतु भी मिथ्या साबित होता है।

इन युक्तियों और प्रमाणों से सिद्ध है कि 'जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय' ग्रन्थ के लेखक ने तिलोयपण्णत्ती को यापनीयग्रन्थ सिद्ध करने के लिए जो हेतु उपस्थित किये हैं, उनमें से कुछ का तो अस्तित्व ही नहीं है अर्थात् वे असत्य हैं तथा कुछ में हेतु का लक्षण घटित नहीं होता, अतः वे हेत्वाभास या अहेतु हैं। इस तरह उसे यापनीयग्रन्थ सिद्ध करनेवाला कोई हेतु उपलब्ध न होने से निर्णीत होता है कि वह यापनीयग्रन्थ नहीं है। इसके विपरीत उसे दिगम्बरग्रन्थ सिद्ध करनेवाले अनेक हेतु

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

उपलब्ध हैं, जिनका वर्णन आरंभ में किया गया है। अतः उनसे स्थापित होता है कि तिलोयपण्णत्ती दिगम्बरग्रन्थ है।

उपसंहार

तिलोयपण्णत्ती के दिगम्बराचार्यकृत होने के प्रमाण सूत्ररूप में

अन्त में उन प्रमाणों को सूत्ररूप में संकलित किया जा रहा है, जिनसे प्रत्यक्षतः सिद्ध होता है कि तिलोयपण्णत्ती दिगम्बराचार्यकृत ग्रन्थ है। वे इस प्रकार हैं—

१. तिलोयपण्णत्ती में सवस्त्रमुक्ति, स्त्रीमुक्ति, गृहस्थमुक्ति, अन्यलिंगिमुक्ति और केवलिभुक्ति का निषेध किया गया है, जो यापनीयमत के प्रमुख सिद्धान्त हैं।

२. तिलोयपण्णत्ती में २८ मूलगुणों का विधान है। यह भी यापनीयमत के विरुद्ध है।

३. उसमें मोक्षमार्ग को चतुर्दश-गुणस्थानात्मक बतलाया गया है, जिसे श्वेताम्बर और यापनीय नहीं मानते।

४. तिलोयपण्णत्ती में स्त्रियों के पूर्वधर होने का निषेध है।

५. तिलोयपण्णत्ती में मल्लिनाथ के साथ स्त्रीदीक्षा का उल्लेख नहीं है, तथा मल्लिनाथ का अवतार अपराजित स्वर्ग से बतलाया गया है, जयन्त स्वर्ग से नहीं। यह यापनीयमत के विरुद्ध है।

६. समस्त तीर्थंकरों के तीर्थ में केवल मुनियों के मोक्ष का कथन है।

७. हुण्डावसर्पिणी के दोषों में स्त्रीतीर्थंकर के होने का उल्लेख नहीं है।

८. तिलोयपण्णत्ती में चौदहपूर्वधारियों की परम्परा दिगम्बरमतानुसार दी गयी है।

९. उसमें आगमों के विच्छेद का कथन है, जब कि श्वेताम्बर और यापनीय आगमों का विच्छेद नहीं मानते।

१०. तिलोयपण्णत्ती में कल्पों (स्वर्गों) की संख्या सोलह और बारह दोनों मानी गयी है। श्वेताम्बर और यापनीय केवल बारह मानते हैं।

११. तिलोयपण्णत्ती में अनुदिश नामक नौ स्वर्गों का भी अस्तित्व स्वीकार किया गया है, जबकि श्वेताम्बर और यापनीय स्वीकार नहीं करते।

१२. तिलोयपण्णत्ती में भौगोलिक वर्णन जिनभद्रगणि-क्षमाश्रमण रचित श्वेताम्बर-ग्रन्थ बृहत्क्षेत्रसमास से भिन्न है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

१३. अन्तरद्वीपों की संख्या ९६ मानी गयी है, जो श्वेताम्बरमत से भिन्न है।

१४. काल को स्वतंत्र द्रव्य माना गया है, श्वेताम्बर और यापनीय ऐसा नहीं मानते।

१५. तिलोयपण्णत्ती में तीर्थंकरों का उपदेश ऐसी भाषा में होने का वर्णन है जो अठारह महाभाषाओं और सात सौ क्षुद्र भाषाओं में परिणत हो जाती है। यापनीय-मान्य श्वेताम्बर-आगम केवल अर्धमागधी को दिव्योपदेश की भाषा मानते हैं।

१६. चामरप्रतिहार्य में चामरों की बहुलता का उल्लेख है, जब कि श्वेताम्बरग्रन्थों में केवल दो चामर माने गये हैं।

१७. तिलोयपण्णत्ती में केवलज्ञान के ग्यारह अतिशयों में भगवान् के आकशगमन का कथन है, जिसे श्वेताम्बर और यापनीय नहीं मानते।

१८. तिलोयपण्णत्ती में कुन्दकुन्द के अध्यात्मवाद का अनुसरण किया गया है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

अष्टादश अध्याय

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

अष्टादश अध्याय

सन्मतिसूत्रकार सिद्धसेन : दिगम्बराचार्य

प्रथम प्रकरण

सन्मतिसूत्रकार के दिगम्बर होने के प्रमाण

आचार्य सिद्धसेनकृत सन्मतिसूत्र प्राचीनकाल से दिगम्बरग्रन्थ के रूप में प्रसिद्ध है, किन्तु कुछ आधुनिक श्वेताम्बर विद्वानों ने उसे श्वेताम्बरग्रन्थ तथा कुछ नवीन दिगम्बर शोधकर्त्ताओं ने यापनीयग्रन्थ सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। डॉ० सागरमल जी ने उसे स्वकल्पित उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थपरम्परा का ग्रन्थ बतलाया है।

माननीय पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार ने गहन अनुसन्धान करके प्रबल युक्तियों और प्रमाणों के द्वारा सिद्ध किया है कि वह दिगम्बरग्रन्थ ही है। उनका यह अनुसन्धानात्मक लेख उनके **पुरातन-जैनवाक्य-सूची** नामक ग्रन्थ की प्रस्तावना का अंग है, जो पृष्ठ ११९ से १६८ तक **सन्मतिसूत्र और सिद्धसेन** नाम से मुद्रित है। उनकी युक्तियों और प्रमाणों को ज्यों का त्यों प्रस्तुत कर रहा हूँ। केवल उनके द्वारा प्रयुक्त कुल तीन (क), (ख), (ग) क्रमाक्षरवाले शीर्षकों के स्थान पर तथा अन्य अनेक शीर्षकरहित स्थानों पर नये शीर्षकों का प्रयोग मेरे द्वारा किया जा रहा है।

१
सन्मतिसूत्र जैनदर्शन-प्रभावक ग्रन्थ

मुख्तार जी 'पुरातन-जैन-वाक्य-सूची' की प्रस्तावना में 'सन्मतिसूत्र और सिद्धसेन' शीर्षक के अन्तर्गत सिद्धसेनकृत 'सन्मतिसूत्र' के विषय में लिखते हैं-"इसकी गणना जैनशासन के दर्शन-प्रभावक ग्रंथों में है। श्वेताम्बरों के **जीतकल्पचूर्णि** ग्रंथ की **श्रीचन्द्रसूरि**-विरचित **विषमपदव्याख्या** नाम की टीका में **श्रीअकलङ्कदेव** के **सिद्धि-विनिश्चय** ग्रंथ के साथ इस **सन्मति** ग्रंथ का भी दर्शनप्रभावक ग्रंथों में नामोल्लेख किया गया है और लिखा है कि 'ऐसे दर्शनप्रभावक शास्त्रों का अध्ययन करते हुए साधु को अकल्पित प्रतिसेवना का दोष भी लगे, तो उसका कुछ भी प्रायश्चित्त नहीं है, वह साधु शुद्ध है।' यथा—

"**दंसण त्ति—दंसणपभावगाणि सत्थाणि सिद्धिविणिच्छय-सम्मत्यादि गिण्हंतोऽसंथरमाणो जं अकप्पियं पडिसेवइ जयणाए तत्थ सो सुद्धोऽप्रायश्चित्त इत्यर्थः।**"[१]

"इससे प्रथमोल्लिखित **सिद्धिविनिश्चय** की तरह यह ग्रंथ भी कितने असाधारण महत्त्व का है इसे विज्ञपाठक स्वयं समझ सकते हैं। ऐसे ग्रंथ जैनदर्शन की प्रतिष्ठा को स्व-पर हृदयों में अंकित करनेवाले होते हैं। तदनुसार यह ग्रंथ भी अपनी कीर्ति को अक्षुण्ण बनाये हुए है।" (पु.जै.वा.सू./प्रस्ता./पृ.११९)।

२

सिद्धसेन नाम के अनेक ग्रन्थकार

मुख्तार जी आगे लिखते हैं—"इस **सन्मति** ग्रंथ के कर्त्ता आचार्य **सिद्धसेन** हैं, इसमें किसी को भी कोई विवाद नहीं है। अनेक ग्रंथों में ग्रंथनाम के साथ सिद्धसेन का नाम उल्लिखित है और इस ग्रन्थ के वाक्य भी सिद्धसेन नाम के साथ उद्धृत मिलते हैं, जैसे जयधवला (क.पा./भाग १/पृ. २३६) में आचार्य वीरसेन ने "**णामं ठवणा दवियं**" नाम की छठी गाथा को "**उत्तं च सिद्धसेणेण**" इस वाक्य के साथ उद्धृत किया है और **पंचवस्तु** में आचार्य हरिभद्र ने "**आयरियसिद्धसेणेण सम्मईए पइट्ठिअजसेणं**" वाक्य के द्वारा **सन्मति** को सिद्धसेन की कृतिरूप में निर्दिष्ट किया है, साथ ही "**कालो सहाव णियई**" नाम की एक गाथा भी उसकी उद्धृत की है। परन्तु ये सिद्धसेन कौन-से हैं, किस विशेष परिचय को लिए हुए हैं? कौन-से सम्प्रदाय अथवा आम्नाय से सम्बन्ध रखते हैं? इनके गुरु कौन थे? इनकी दूसरी कृतियाँ कौनसी हैं? और इनका समय क्या है? ये सब बातें ऐसी हैं, जो विवाद का विषय जरूर हैं। क्योंकि जैनसमाज में सिद्धसेन नाम के अनेक आचार्य और प्रखर तार्किक विद्वान् भी हो गये हैं और इस ग्रंथ में ग्रंथकार ने अपना कोई परिचय दिया नहीं, न रचनाकाल ही दिया है, ग्रंथ की आदिम गाथा में प्रयुक्त हुए **सिद्धं** पद के द्वारा श्लेषरूप में अपने नाम का सूचनमात्र किया है, इतना ही समझा जा सकता है। कोई प्रशस्ति भी किसी दूसरे विद्वान् के द्वारा निर्मित होकर ग्रंथ के अन्त में लगी हुई नहीं है। दूसरे जिन ग्रंथों, खासकर **द्वात्रिंशिकाओं** तथा **न्यायावतार** को इन्हीं आचार्य की कृति समझा जाता और प्रतिपादन किया जाता है, उनमें भी कोई परिचय-पद्य तथा प्रशस्ति नहीं

---

१. श्वेताम्बरों के **निशीथ** ग्रन्थ की **चूर्णि** में भी ऐसा ही उल्लेख है—"दंसणगाही-दंसणणाणप्पभाव-गाणि सत्थाणि सिद्धिविणिच्छय-संमतिमादि गेण्हंतो असंथरमाणे जं अकप्पियं पडिसेवति जयणाते तत्थ सो सुद्धो अप्रायश्चित्ती भवतीत्यर्थः।" (उद्देशक १)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

अष्टादश अध्याय

सन्मतिसूत्रकार सिद्धसेन : दिगम्बराचार्य

प्रथम प्रकरण

सन्मतिसूत्रकार के दिगम्बर होने के प्रमाण

आचार्य सिद्धसेनकृत सन्मतिसूत्र प्राचीनकाल से दिगम्बरग्रन्थ के रूप में प्रसिद्ध है, किन्तु कुछ आधुनिक श्वेताम्बर विद्वानों ने उसे श्वेताम्बरग्रन्थ तथा कुछ नवीन दिगम्बर शोधकर्त्ताओं ने यापनीयग्रन्थ सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। डॉ० सागरमल जी ने उसे स्वकल्पित उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थपरम्परा का ग्रन्थ बतलाया है।

माननीय पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार ने गहन अनुसन्धान करके प्रबल युक्तियों और प्रमाणों के द्वारा सिद्ध किया है कि वह दिगम्बरग्रन्थ ही है। उनका यह अनुसन्धानात्मक लेख उनके **पुरातन-जैनवाक्य-सूची** नामक ग्रन्थ की प्रस्तावना का अंग है, जो पृष्ठ ११९ से १६८ तक **सन्मतिसूत्र और सिद्धसेन** नाम से मुद्रित है। उनकी युक्तियों और प्रमाणों को ज्यों का त्यों प्रस्तुत कर रहा हूँ। केवल उनके द्वारा प्रयुक्त कुल तीन (क), (ख), (ग) क्रमाक्षरवाले शीर्षकों के स्थान पर तथा अन्य अनेक शीर्षकरहित स्थानों पर नये शीर्षकों का प्रयोग मेरे द्वारा किया जा रहा है।

१
सन्मतिसूत्र जैनदर्शन-प्रभावक ग्रन्थ

मुख्तार जी 'पुरातन-जैन-वाक्य-सूची' की प्रस्तावना में 'सन्मतिसूत्र और सिद्धसेन' शीर्षक के अन्तर्गत सिद्धसेनकृत 'सन्मतिसूत्र' के विषय में लिखते हैं-"इसकी गणना जैनशासन के दर्शन-प्रभावक ग्रंथों में है। श्वेताम्बरों के **जीतकल्पचूर्णि** ग्रंथ की **श्रीचन्द्रसूरि**-विरचित **विषमपदव्याख्या** नाम की टीका में **श्रीअकलङ्कदेव** के **सिद्धि-विनिश्चय** ग्रंथ के साथ इस **सन्मति** ग्रंथ का भी दर्शनप्रभावक ग्रंथों में नामोल्लेख किया गया है और लिखा है कि 'ऐसे दर्शनप्रभावक शास्त्रों का अध्ययन करते हुए साधु को अकल्पित प्रतिसेवना का दोष भी लगे, तो उसका कुछ भी प्रायश्चित्त नहीं है, वह साधु शुद्ध है।' यथा—

''दंसण त्ति—दंसणपभावगाणि सत्थाणि सिद्धिविणिच्छय-सम्मत्यादि गिण्हंतोऽसंथरमाणो जं अकप्पियं पडिसेवइ जयणाए तत्थ सो सुद्धोऽप्रायश्चित्त इत्यर्थः।''[१]

''इससे प्रथमोल्लिखित **सिद्धिविनिश्चय** की तरह यह ग्रंथ भी कितने असाधारण महत्त्व का है इसे विज्ञपाठक स्वयं समझ सकते हैं। ऐसे ग्रंथ जैनदर्शन की प्रतिष्ठा को स्व-पर हृदयों में अंकित करनेवाले होते हैं। तदनुसार यह ग्रंथ भी अपनी कीर्ति को अक्षुण्ण बनाये हुए है।'' (पु.जै.वा.सू./प्रस्ता./पृ.११९)।

२

सिद्धसेन नाम के अनेक ग्रन्थकार

मुख्तार जी आगे लिखते हैं—''इस **सन्मति** ग्रंथ के कर्त्ता आचार्य **सिद्धसेन** हैं, इसमें किसी को भी कोई विवाद नहीं है। अनेक ग्रंथों में ग्रंथनाम के साथ सिद्धसेन का नाम उल्लिखित है और इस ग्रन्थ के वाक्य भी सिद्धसेन नाम के साथ उद्धृत मिलते हैं, जैसे जयधवला (क.पा./भाग १/पृ. २३६) में आचार्य वीरसेन ने ''**णामं ठवणा दवियं**'' नाम की छठी गाथा को ''**उत्तं च सिद्धसेणेण**'' इस वाक्य के साथ उद्धृत किया है और **पंचवस्तु** में आचार्य हरिभद्र ने ''**आयरियसिद्धसेणेण सम्मईए पइट्ठिअजसेणं**'' वाक्य के द्वारा **सन्मति** को सिद्धसेन की कृतिरूप में निर्दिष्ट किया है, साथ ही ''**कालो सहाव णियई**'' नाम की एक गाथा भी उसकी उद्धृत की है। परन्तु ये सिद्धसेन कौन-से हैं, किस विशेष परिचय को लिए हुए हैं? कौन-से सम्प्रदाय अथवा आम्नाय से सम्बन्ध रखते हैं? इनके गुरु कौन थे? इनकी दूसरी कृतियाँ कौनसी हैं? और इनका समय क्या है? ये सब बातें ऐसी हैं, जो विवाद का विषय जरूर हैं। क्योंकि जैनसमाज में सिद्धसेन नाम के अनेक आचार्य और प्रखर तार्किक विद्वान् भी हो गये हैं और इस ग्रंथ में ग्रंथकार ने अपना कोई परिचय दिया नहीं, न रचनाकाल ही दिया है, ग्रंथ की आदिम गाथा में प्रयुक्त हुए **सिद्धं** पद के द्वारा श्लेषरूप में अपने नाम का सूचनमात्र किया है, इतना ही समझा जा सकता है। कोई प्रशस्ति भी किसी दूसरे विद्वान् के द्वारा निर्मित होकर ग्रंथ के अन्त में लगी हुई नहीं है। दूसरे जिन ग्रंथों, खासकर **द्वात्रिंशिकाओं** तथा **न्यायावतार** को इन्हीं आचार्य की कृति समझा जाता और प्रतिपादन किया जाता है, उनमें भी कोई परिचय-पद्य तथा प्रशस्ति नहीं

---

१. श्वेताम्बरों के **निशीथ** ग्रन्थ की **चूर्णि** में भी ऐसा ही उल्लेख है—''दंसणगाही-दंसणणाणप्पभाव-गाणि सत्थाणि सिद्धिविणिच्छय-संमतिमादि गेण्हंतो असंथरमाणे जं अकप्पियं पडिसेवति जयणाते तत्थ सो सुद्धो अप्रायश्चित्ती भवतीत्यर्थः।'' (उद्देशक १)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

है और न कोई ऐसा स्पष्ट प्रमाण अथवा युक्तिवाद ही सामने लाया गया है, जिनसे उन सब ग्रंथों को एक ही सिद्धसेनकृत माना जा सके। और इसलिये अधिकांश में कल्पनाओं तथा कुछ भ्रान्त धारणाओं के आधार पर ही विद्वान् लोग उक्त बातों के निर्णय तथा प्रतिपादन में प्रवृत्त होते रहे हैं, इसी से कोई भी ठीक निर्णय अभी तक नहीं हो पाया। वे विवादापन्न ही चली जाती हैं और सिद्धसेन के विषय में जो भी परिचय-लेख लिखे गये हैं, वे सब प्राय: खिचड़ी बने हुए हैं और कितनी ही गलतफहमियों को जन्म दे रहे तथा प्रचार में ला रहे हैं। अत: इस विषय में गहरे अनुसन्धान के साथ गंभीर विचार की जरूरत है और उसी का यहाँ पर प्रयत्न किया जाता है।'' (पु.जै.वा.सू./ प्रस्ता./ पृ. १२६)।

''दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायों में सिद्धसेन के नाम पर जो ग्रंथ चढ़े हुए हैं, उनमें से कितने ही ग्रंथ तो ऐसे हैं, जो निश्चितरूप में दूसरे उत्तरवर्ती सिद्धसेनों की कृतियाँ हैं, जैसे १.जीतकल्पचूर्णि, २.तत्त्वार्थाधिगमसूत्र की टीका, ३.प्रवचनसारोद्धार की वृत्ति, ४. एकविंशतिस्थानप्रकरण (प्रा.) और ५.सिद्धिश्रेयसमुदय (शक्रस्तव) नाम का मंत्रगर्भित गद्यस्तोत्र। कुछ ग्रंथ ऐसे हैं, जिनका सिद्धसेन नाम के साथ उल्लेख तो मिलता है, परन्तु आज वे उपलब्ध नहीं हैं, जैसे १.बृहत्-षड्दर्शनसमुच्चय[२] (जैन-ग्रंथावली, पृ. ९४), २.विषोग्रग्रहशमनविधि, जिसका उल्लेख उग्रादित्याचार्य (विक्रम ९वीं शताब्दी) के कल्याणकारक वैद्यकग्रंथ (२०-८५) में पाया जाता है[३] और ३.नीतिसार-पुराण, जिसका उल्लेख केशवसेनसूरि (वि० सं० १६८८) कृत कर्णामृतपुराण के निम्न पद्यों में पाया जाता है और जिनमें उसकी श्लोकसंख्या भी १५६३०० दी हुई है—

सिद्धोक्त-नीतिसारादिपुराणोद्धृत-सन्मतिम्।
विधास्यामि प्रसन्नार्थं ग्रन्थं सन्दर्भगर्भितम्॥ १९॥

खंखाग्निरसवाणेन्दु (१५६३००) श्लोकसंख्या प्रसूत्रिता।
नीतिसारपुराणस्य सिद्धसेनादिसूरिभिः॥ २०॥

उपलब्ध न होने के कारण ये तीनों ग्रन्थ विचार में कोई सहायक नहीं हो

---

२. हो सकता है कि यह ग्रन्थ हरिभद्रसूरि का 'षड्दर्शनसमुच्चय' ही हो और किसी गलती से सूरत के उन सेठ भगवानदास कल्याणदास की प्राइवेट रिपोर्ट में, जो पिटर्सन साहब की नौकरी में थे, दर्ज हो गया हो, जिस पर से जैनग्रन्थावली में लिया गया है। क्योंकि इसके साथ में जिस टीका का उल्लेख है, उसे 'गुणरत्न' की लिखा है और हरिभद्र के षड्दर्शनसमुच्चय पर भी गुणरत्न की टीका है।

३. ''शालाक्यं पूज्यपाद-प्रकटितमधिकं शल्यतंत्रं च पात्रस्वामि-प्रोक्तं विषोग्रग्रहशमनविधिः सिद्धसेनैः प्रसिद्धैः।''

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

सकते। इन आठ ग्रन्थों के अलावा चार ग्रन्थ और हैं—१. द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिका, २. प्रस्तुत सन्मतिसूत्र, ३. न्यायावतार और ४. कल्याणमन्दिर।'' (पु.जै.वा.सू./प्रस्ता./पृ. १२६-१२७)।

३

कल्याणमन्दिरस्तोत्र-वर्णित पार्श्वनाथ-उपसर्ग श्वेताम्बरमत-विरुद्ध

''**कल्याणमन्दिर** नाम का स्तोत्र ऐसा है, जिसे श्वेताम्बरसम्प्रदाय में सिद्धसेन दिवाकर की कृति समझा और माना जाता है, जब कि दिगम्बरपरम्परा में वह स्तोत्र के अन्तिम पद्य में सूचित किये हुए **कुमुदचन्द्र** नाम के अनुसार **कुमुदचन्द्राचार्य** की कृति माना जाता है। इस विषय में श्वेताम्बर-सम्प्रदाय का यह कहना है कि ''**सिद्धसेन** का नाम दीक्षा के समय **कुमुदचन्द्र** रक्खा गया था, आचार्यपद के समय उनका पुराना नाम ही उन्हें दे दिया गया था, ऐसा **प्रभाचन्द्रसूरि** के **प्रभावकचरित** (सं० १३३४) से जाना जाता है और इसलिये कल्याणमन्दिर में प्रयुक्त हुआ **कुमुदचन्द्र** नाम सिद्धसेन का ही नामान्तर है।'' दिगम्बर समाज इसे पीछे की कल्पना और एक दिगम्बरकृति को हथियाने की योजनामात्र समझता है, क्योंकि प्रभावकचरित से पहले सिद्धसेन-विषयक जो दो प्रबन्ध लिखे गये हैं, उनमें कुमुदचन्द्र नाम का कोई उल्लेख नहीं है, पं० सुखलाल जी और पं० बेचरदास जी ने अपनी प्रस्तावना में भी इस बात को व्यक्त किया है। बाद के बने हुए **मेरुतुङ्गाचार्य** के **प्रबन्धचिन्तामणि** (सं० १३६१) में और **जिनप्रभसूरि** के **विविधतीर्थकल्प** (सं०१३८९) में भी उसे अपनाया नहीं गया है। **राजशेखर** के **प्रबन्धकोश** अपरनाम **चतुर्विंशतिप्रबन्ध** (सं०१४०५) में कुमुदचंद्र नाम को अपनाया जरूर गया है, परन्तु प्रभावकचरित के विरुद्ध कल्याणमन्दिरस्तोत्र को **पार्श्वनाथद्वात्रिंशिका** के रूप में व्यक्त किया है और साथ ही यह भी लिखा है कि वीर की **द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिका-स्तुति** से जब कोई चमत्कार देखने में नहीं आया, तब यह पार्श्वनाथद्वात्रिंशिका रची गई है, जिसके ११वें से नहीं, किन्तु प्रथम पद्य से ही चमत्कार का प्रारम्भ हो गया।[४] ऐसी स्थिति में पार्श्वनाथद्वात्रिंशिका के रूप में जो कल्याणमन्दिरस्तोत्र रचा गया वह ३२ पद्यों का कोई दूसरा ही होना चाहिये, न कि वर्तमान कल्याणमन्दिरस्तोत्र, जिसकी रचना ४४ पद्यों में हुई है और इससे दोनों कुमुदचन्द्र भी भिन्न होने चाहिये। इसके सिवाय, वर्तमान कल्याणमन्दिरस्तोत्र में '**प्राग्भारसंभृतनभांसि रजांसि रोषात्**' (३१) इत्यादि तीन पद्य ऐसे हैं, जो पार्श्वनाथ को दैत्यकृत उपसर्ग से युक्त प्रकट करते हैं, जो दिगम्बर मान्यता के अनुकूल और

---

४. ''इत्यादिश्रीवीरद्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिका कृता। परं तस्मात्तादृक्षं चमत्कारमनालोक्य पश्चात् श्री-पार्श्वनाथद्वात्रिंशिकामभिकर्त्तुं कल्याणमन्दिरस्तवं चक्रे प्रथमश्लोके एव प्रासादस्थात् शिखिशिखा-ग्रादिव लिङ्गाद् धूमवर्तिरुदतिष्ठत्।'' पाटन की हेमचन्द्राचार्य-ग्रन्थावली में प्रकाशित प्रबन्धकोश।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

श्वेताम्बर मान्यता के प्रतिकूल हैं, क्योंकि श्वेताम्बरीय आचाराङ्गनिर्युक्ति में वर्द्धमान को छोड़कर शेष २३ तीर्थंकरों के तपःकर्म को निरुपसर्ग वर्णित किया है।[५] इससे भी प्रस्तुत कल्याणमन्दिर दिगम्बरकृति होनी चाहिये।'' (पु. जै. वा. सू. / प्रस्ता. / पृ. १२७-१२८)।

''प्रमुख श्वेताम्बर विद्वान् पं० सुखलाल जी और पं० बेचरदास जी ने ग्रंथ की गुजराती प्रस्तावना में[६] विविधतीर्थकल्प को छोड़कर शेष पाँच प्रबन्धों का सिद्धसेन-विषयक सार बहुपरिश्रम के साथ दिया है और उसमें कितनी ही परस्परविरोधी तथा मौलिक मतभेद की बातों का भी उल्लेख किया है और साथ ही यह निष्कर्ष निकाला है कि ''सिद्धसेन दिवाकर का नाम मूल में कुमुदचंद्र नहीं था, होता तो दिवाकर-विशेषण की तरह यह श्रुतिप्रिय नाम भी किसी-न-किसी प्राचीन ग्रंथ में सिद्धसेन की निश्चित कृति अथवा उसके उद्धृत वाक्यों के साथ जरूर उल्लेखित मिलता। प्रभावकचरित से पहले के किसी भी ग्रंथ में इसका उल्लेख नहीं है। और यह कि कल्याणमन्दिर को सिद्धसेन की कृति सिद्ध करने के लिये कोई निश्चित प्रमाण नहीं है, वह सन्देहास्पद है।'' ऐसी हालत में कल्याणमन्दिर की बात को यहाँ छोड़ ही दिया जाता है। प्रकृत-विषय के निर्णय में वह कोई विशेष साधक-बाधक भी नहीं है।'' (पु. जै. वा. सू. / प्रस्ता. / पृ. १२८)।

४

न्यायावतार एवं ३२ द्वात्रिंशिकाओं का परिचय

''अब रही **द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिका, सन्मतिसूत्र** और **न्यायावतार** की बात। न्यायावतार एक ३२ श्लोकों का प्रमाण-नय-विषयक लघुग्रंथ है, जिसके आदि-अन्त में कोई मंगला-चरण तथा प्रशस्ति नहीं है, जो आमतौर पर श्वेताम्बराचार्य सिद्धसेन दिवाकर की कृति माना जाता है और जिस पर श्वे० **सिद्धर्षि** (सं० ९६२) की विवृति और उस विवृति पर देवभद्र की टिप्पणी उपलब्ध है और ये दोनों टीकाएँ डॉ० पी० एल० वैद्य के द्वारा सम्पादित होकर सन् १९२८ में प्रकाशित हो चुकी हैं। **सन्मतिसूत्र** का परिचय ऊपर दिया ही जा चुका है। उस पर **अभयदेवसूरि** की २५ हजार श्लोक-परिमाण जो संस्कृतटीका है, वह उक्त दोनों विद्वानों के द्वारा सम्पादित होकर संवत् १९८७

५. सव्वेसिं तवो कम्मं निरुवसग्गं तु वण्णियं जिणाणं।
नवरं तु वड्ढमाणस्ससोवसग्गं मुणेयव्वं॥ २७६॥

६. यह प्रस्तावना ग्रन्थ के गुजराती अनुवाद-भावार्थ के साथ सन् १९३२ में प्रकाशित हुई है और ग्रन्थ का यह गुजराती संस्करण बाद को अंग्रेजी में अनुवादित होकर 'सन्मतितर्क' के नाम से सन् १९३९ में प्रकाशित हुआ है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

में प्रकाशित हो चुकी है। **द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिका** ३२-३२ पद्यों की ३२ कृतियाँ बतलाई जाती हैं, जिनमें से २१ उपलब्ध हैं। उपलब्ध द्वात्रिंशिकाएँ भावनगर की जैनधर्मप्रसारक सभा की तरफ से विक्रम संवत् १९६५ में प्रकाशित हो चुकी हैं। ये जिस क्रम से प्रकाशित हुई हैं, उसी क्रम से निर्मित हुई हों, ऐसा उन्हें देखने से मालूम नहीं होता, वे बाद को किसी लेखक अथवा पाठक द्वारा उस क्रम से संग्रह की अथवा कराई गई जान पड़ती हैं। इस बात को पं० सुखलाल जी आदि ने भी प्रस्तावना में व्यक्त किया है। साथ ही यह भी बतलाया है कि "ये सभी द्वात्रिंशिकाएँ सिद्धसेन ने जैनदीक्षा स्वीकार करने के पीछे ही रची हों, ऐसा नहीं कहा जा सकता, इनमें से कितनी ही द्वात्रिंशिकाएँ (बत्तीसियाँ) उनके पूर्वाश्रम में भी रची हुई हो सकती हैं।" और यह ठीक है, परन्तु ये सभी द्वात्रिंशिकाएँ एक ही सिद्धसेन की रची हुई हों, ऐसा भी नहीं कहा जा सकता, चुनाँचे २१वीं द्वात्रिंशिका के विषय में पं० सुखलाल जी आदि ने प्रस्तावना में यह स्पष्ट स्वीकार भी किया है कि "उसकी भाषारचना और वर्णित वस्तु की दूसरी बत्तीसियों के साथ तुलना करने पर ऐसा मालूम होता है कि वह बत्तीसी किसी जुदे ही सिद्धसेन की कृति है और चाहे जिस कारण से दिवाकर (सिद्धसेन) की मानी जाने वाली कृतियों में दाखिल होकर दिवाकर के नाम पर चढ़ गई है।" इसे महावीरद्वात्रिंशिका[७] लिखा है, महावीर नाम का इसमें उल्लेख भी है, जबकि और किसी द्वात्रिंशिका में 'महावीर' उल्लेख नहीं है, प्राय: 'वीर' या 'वर्द्धमान' नाम का ही उल्लेख पाया जाता है। इसकी पद्यसंख्या ३३ है और ३३ वें पद्य में स्तुति का माहात्म्य दिया हुआ है, ये दोनों बातें दूसरी सभी द्वात्रिंशिकाओं से विलक्षण हैं और उनसे इसके भिन्नकर्तृत्व की द्योतक हैं। इस पर टीका भी उपलब्ध है, जब कि और किसी द्वात्रिंशिका पर कोई टीका उपलब्ध नहीं है। चंद्रप्रभसूरि ने प्रभावकचरित में न्यायावतावर की, जिस पर टीका उपलब्ध है, गणना भी ३२ द्वात्रिंशिकाओं में की है, ऐसा कहा जाता है, परन्तु प्रभावकचरित में वैसा कोई उल्लेख नहीं मिलता और न उसका समर्थन पूर्ववर्ती तथा उत्तरवर्ती अन्य किसी प्रबन्ध से ही होता है। टीकाकारों ने भी उसके द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिका का अंग होने की कोई बात सूचित नहीं की, और इसलिये न्यायावतार एक स्वतंत्र ही ग्रंथ होना चाहिये तथा उसी रूप में प्रसिद्धि को भी प्राप्त है।" (पु.जै.वा.सू./प्रस्ता./पृ. १२८-१२९)।

"**२१वीं द्वात्रिंशिका** के अन्त में **सिद्धसेन** नाम भी लगा हुआ है, जब कि **५वीं द्वात्रिंशिका** को छोड़कर और किसी द्वात्रिंशिका में वह नहीं पाया जाता। हो सकता

---

७. यह द्वात्रिंशिका अलग ही है, ऐसा ताडपत्रीय प्रति से भी जाना जाता है, जिसमें २० ही द्वात्रिंशिकाएँ अंकित हैं और उनके अन्त में "ग्रन्थाग्रं ८३० मंगलमस्तु" लिखा है, जो ग्रन्थ की समाप्ति के साथ उसकी श्लोकसंख्या का भी द्योतक है। जैनग्रन्थावली (पृ. २८१)-गत ताडपत्रीय प्रति में भी २० द्वात्रिंशिकाएँ हैं।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

है कि ये नामवाली दोनों द्वात्रिंशिकाएँ अपने स्वरूप पर से एक नहीं, किन्तु दो अलग-अलग सिद्धसेनों से सम्बन्ध रखती हों और शेष बिना नामवाली द्वात्रिंशिकाएँ इनसे भिन्न दूसरे ही सिद्धसेन अथवा सिद्धसेनों की कृतिस्वरूप हों। पं० सुखलाल जी और पं० बेचरदास जी ने पहली पाँच द्वात्रिंशिकाओं को, जो वीर भगवान् की स्तुतिपरक हैं, एक ग्रूप (समुदाय) में रक्खा है और उस ग्रूप (**द्वात्रिंशिकापंचक**) का स्वामी समन्तभद्र के स्वयम्भूस्तोत्र के साथ साम्य घोषित करके तुलना करते हुए लिखा है कि "**स्वयम्भूस्तोत्र** का प्रारंभ जिस प्रकार **स्वयम्भू** शब्द से होता है और अन्तिम पद्य (१४३) में ग्रन्थकार ने श्लेषरूप से अपना नाम **समन्तभद्र** सूचित किया है, उसी प्रकार इस द्वात्रिंशिकापंचक का प्रारम्भ भी **स्वयम्भू** शब्द से होता है और उसके अन्तिम पद्य (५,३२) में भी ग्रंथकार ने श्लेषरूप में अपना नाम **सिद्धसेन** दिया है।" इससे शेष १५ द्वात्रिंशिकाएँ भिन्न ग्रूप अथवा ग्रूपों से सम्बन्ध रखती हैं और उनमें प्रथम ग्रूप की पद्धति को न अपनाये जाने अथवा अंत में ग्रंथकार का नामोल्लेख तक न होने के कारण वे दूसरे सिद्धसेन या सिद्धसेनों की कृतियाँ भी हो सकती हैं। उनमें से ११वीं किसी राजा की स्तुति को लिये हुए है, छठी तथा आठवीं समीक्षात्मक हैं और शेष बारह दार्शनिक तथा वस्तुचर्चावाली हैं।" (पु.जै.वा.सू./प्रस्ता./पृ. १२९)।

"इन सब द्वात्रिंशिकाओं के सम्बन्ध में यहाँ दो बातें और भी नोट किये जाने के योग्य हैं—एक यह कि द्वात्रिंशिका (बत्तीसी) होने के कारण जब प्रत्येक की पद्यसंख्या ३२ होनी चाहिये थी, तब वह घट-बढ़रूप में पाई जाती है। १०वीं में दो पद्य तथा २१वीं में एक पद्य बढ़ती है, और ८वीं में छह पद्यों की, ११वीं में चार की तथा १५वीं में एक पद्य की घटती है। यह घट-बढ़ भावनगर की उक्त मुद्रित प्रति में ही नहीं पाई जाती, बल्कि **पूना के भाण्डारकर इन्स्टिट्यूट** और **कलकत्ता की एशियाटिक सोसाइटी** की हस्तलिखित प्रतियों में भी पाई जाती है। रचना-समय की तो यह घट-बढ़ प्रतीति का विषय नहीं, पं० सुखलाल जी आदि ने भी लिखा है कि "बढ़-घट की यह घालमेल रचना के बाद ही किसी कारण से होनी चाहिये।" इसका एक कारण लेखकों की असावधानी हो सकता है, जैसे १९वीं द्वात्रिंशिका में एक पद्य की कमी थी, वह पूना और कलकत्ता की प्रतियों से पूरी हो गई। दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि किसी ने अपने प्रयोजन के वश घालमेल की हो। कुछ भी हो, इससे उन द्वात्रिंशिकाओं के पूर्णरूप को समझने आदि में बाधा पड़ रही है, जैसे ११वीं द्वात्रिंशिका से यह मालूम ही नहीं होता कि वह कौन से राजा की स्तुति है, और इससे उसके रचयिता तथा रचना-काल को जानने में भारी बाधा उपस्थित है। यह नहीं हो सकता कि किसी विशिष्ट राजा की स्तुति की जाय और उसमें उसका नाम तक भी न हो। दूसरी स्तुत्यात्मक द्वात्रिंशिकाओं में स्तुत्य का नाम

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

बराबर दिया हुआ है, फिर यही उससे शून्य रही हो यह कैसे कहा जा सकता है? नहीं कहा जा सकता। अतः जरूरत इस बात की है कि द्वात्रिंशिका-विषयक प्राचीन प्रतियों की पूरी खोज की जाय। इससे अनुपलब्ध द्वात्रिंशिकाएँ भी यदि कोई होंगी, तो उपलब्ध हो सकेंगी और उपलब्ध द्वात्रिंशिकाओं से वे अशुद्धियाँ भी दूर हो सकेंगी, जिनके कारण उनका पठन-पाठन कठिन हो रहा है और जिसकी पं० सुखलाल जी आदि को भी भारी शिकायत है।" (पु.जै.वा.सू./प्रस्ता./पृ. १२९-१३०)।

"दूसरी बात यह कि द्वात्रिंशिकाओं को स्तुतियाँ कहा गया है[८] और इनके अवतार का प्रसङ्ग भी स्तुति-विषयक ही है, क्योंकि श्वेताम्बरीय प्रबन्धों के अनुसार विक्रमादित्य राजा की ओर से शिवलिंग को नमस्कार करने का अनुरोध होने पर जब सिद्धसेनाचार्य ने कहा कि यह देवता मेरा नमस्कार सहन करने में समर्थ नहीं है, मेरा नमस्कार सहन करनेवाले दूसरे ही देवता हैं, तब राजा ने कौतुकवश, परिणाम की कोई परवाह न करते हुए नमस्कार के लिए विशेष आग्रह किया।[९] इस पर सिद्धसेन शिवलिंग के सामने आसन जमाकर बैठ गये और इन्होंने अपने इष्टदेव की स्तुति उच्चस्वर आदि के साथ प्रारम्भ कर दी; जैसा कि निम्न वाक्यों से प्रकट है—

श्रुत्वेति पुनरासीनः शिवलिंगस्य स प्रभुः।
उदाजह्रे स्तुतिश्लोकान् तारस्वरकरस्तदा॥ १३८॥

प्रभावकचरित।

"ततः पद्मासनेन भूत्वा द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिकाभिर्देवं स्तुतिमुपचक्रमे।"

विविध-तीर्थकल्प, प्रबन्धकोश।

परन्तु उपलब्ध २१ द्वात्रिंशिकाओं में स्तुतिपरक द्वात्रिंशिकाएँ केवल सात ही हैं, जिनमें भी एक राजा की स्तुति होने से देवताविषयक स्तुतियों की कोटि से निकल जाती है और इस तरह छह द्वात्रिंशिकाएँ ही ऐसी रह जाती हैं, जिनका श्रीवीरवर्द्धमान

---

८. "सिद्धसेणेण पारद्धा बत्तीसियाहिं जिणथुई"--- गद्यप्रबन्ध-कथावली।
तस्सागयस्स तेणं पारद्धा जिणथुई समत्ताहिं।
बत्तीसाहिं बत्तीसियाहिं उद्दामसद्देण॥ पद्यप्रबन्ध / स.प्र./ पृ.५६।
न्यायावतारसूत्रं च श्रीवीरस्तुतिमप्यथ।
द्वात्रिंशच्छ्लोकमानाश्च त्रिंशदन्याः स्तुतीरपि॥ १४३॥ प्रभावकचरित।

९. ये मत्प्रणामसोढारस्ते देवा अपरे ननु।
किं भावि प्रणम त्वं द्राक् प्राह राजेति कौतुकी॥ १३५॥
देवान्निजप्रणम्यांश्च दर्शय त्वं वदन्निति।
भूपतिर्जल्पितस्तेनोत्पाते दोषो न मे नृप॥ १३६॥

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

की स्तुति से सम्बन्ध है और जो उस अवसर पर उच्चरित कही जा सकती हैं, शेष १४ द्वात्रिंशिकाएँ न तो स्तुति-विषयक हैं, न उक्त प्रसंग के योग्य हैं और इसलिये उनकी गणना उन द्वात्रिंशिकाओं में नहीं की जा सकती, जिनकी रचना अथवा उच्चारणा सिद्धसेन ने शिवलिङ्ग के सामने बैठ कर की थी।" (पु.जै.वा.सू./प्रस्ता./पृ. १३०)।

"यहाँ इतना और भी जान लेना चाहिये कि प्रभावकचरित के अनुसार स्तुति का प्रारम्भ "**प्रकाशितं त्वयैकेन यथा सम्यग्जगत्त्रयं**" इत्यादि श्लोकों से हुआ है, जिनमें से '**तथा हि**' शब्द के साथ चार श्लोकों[१०] को उद्धृत करके उनके आगे **इत्यादि** लिखा गया है। और फिर '**न्यायावतारसूत्रं च**' इत्यादि श्लोक द्वारा ३२ कृतियों की और सूचना की गई है, जिनमें से एक **न्यायावतारसूत्र**, दूसरी **श्रीवीरस्तुति** और ३० बत्तीस-बत्तीस श्लोकोंवाली दूसरी स्तुतियाँ हैं। **प्रबन्धचिन्तामणि** के अनुसार स्तुति का प्रारम्भ—

प्रशान्तं दर्शनं यस्य सर्वभूताऽभयप्रदम्।
माङ्गल्यं च प्रशस्तं च शिवस्तेन विभाव्यते॥

"इस श्लोक से होता है, जिसके अनन्तर "**इति द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिका कृता**" लिखकर यह सूचित किया गया है कि वह द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिका स्तुति का प्रथम श्लोक है। इस श्लोक तथा उक्त चारों श्लोकों में से किसी से भी प्रस्तुत द्वात्रिंशिकाओं का प्रारंभ नहीं होता है, न ये श्लोक किसी द्वात्रिंशिका में पाये जाते हैं और न इनके साहित्य का उपलब्ध प्रथम २० द्वात्रिंशिकाओं के साहित्य के साथ कोई मेल ही खाता है। ऐसी हालत में इन दोनों प्रबन्धों तथा लिखित पद्यप्रबन्ध में उल्लेखित द्वात्रिंशिका-स्तुतियाँ उपलब्ध द्वात्रिंशिकाओं से भिन्न कोई दूसरी ही होनी चाहिये। प्रभावकचरित के उल्लेख पर से इसका और भी समर्थन होता है, क्योंकि उसमें **श्रीवीरस्तुति** के

---

१०. चारों श्लोक इस प्रकार हैं—

प्रकाशितं त्वयैकेन यथा सम्यग्जगत्त्रयम्।
समस्तैरपि नो नाथ! वरतीर्थाधिपैस्तथा॥ १३९॥
विद्योतयति वा लोकं यथैकोऽपि निशाकरः।
समुद्गतः समग्रोऽपि तथा किं तारकागणः॥ १४०॥
त्वद्वाक्यतोऽपि केषाञ्चिदबोध इति मेऽद्भुतम्।
भानोर्मरीचयः कस्य नाम नालोकहेतवः॥ १४१॥
नो वाद्भुतमुलूकस्य प्रकृत्या क्लिष्टचेतसः।
स्वच्छा अपि तमस्त्वेन भासन्ते भास्वतः कराः॥ १४२॥

लिखित पद्यप्रबन्ध में भी ये ही चारों श्लोक '**तस्सागयस्स तेणं पारद्धा जिणथुई**' इत्यादि पद्य के अनन्तर **यथा** शब्द के साथ दिये हैं। (स.प्र./पृ. ५४/टि. ५८)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

बाद जिन ३० द्वात्रिंशिकाओं को **अन्याः स्तुतीः** लिखा है, वे श्रीवीर से भिन्न दूसरे ही तीर्थङ्करादि की स्तुतियाँ जान पड़ती हैं और इसलिये उपलब्ध द्वात्रिंशिकाओं के प्रथम ग्रूप **द्वात्रिंशिकापञ्चक** में उनका समावेश नहीं किया जा सकता, जिसमें की प्रत्येक द्वात्रिंशिका श्रीवीरभगवान से ही सम्बन्ध रखती है। उक्त तीनों प्रबन्धों के बाद बने हुए **विविधतीर्थकल्प** और **प्रबन्धकोश** (चतुर्विंशतिप्रबन्ध) में स्तुति का प्रारम्भ **'स्वयंभुवं भूतसहस्त्रनेत्रं'** इत्यादि पद्य से होता है, जो उपलब्ध द्वात्रिंशिकाओं के प्रथम ग्रूप का प्रथम पद्य है, इसे देकर **''इत्यादि श्रीवीरद्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिका कृता''** ऐसा लिखा है। यह पद्य प्रबन्धवर्णित द्वात्रिंशिकाओं का सम्बन्ध उपलब्ध द्वात्रिंशिकाओं के साथ जोड़ने के लिये बाद को अपनाया गया मालूम होता है, क्योंकि एक तो पूर्वरचित प्रबन्धों से इसका कोई समर्थन नहीं होता, और उक्त तीनों प्रबन्धों से इसका स्पष्ट विरोध पाया जाता है। दूसरे, इन दोनों ग्रंथों में द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिका को एकमात्र श्रीवीर से सम्बन्धित किया गया है और उसका विषय भी **देवं स्तोतुमुपचक्रमे** शब्दों के द्वारा **स्तुति** ही बतलाया गया है, परन्तु उस स्तुति को पढ़ने से शिवलिंग का विस्फोट होकर उसमें से वीरभगवान् की प्रतिमा का प्रादुर्भूत होना किसी ग्रंथ में भी प्रकट नहीं किया गया। **विविधतीर्थकल्प** के कर्ता ने **आदिनाथ** की, और **प्रबन्धकोश** के कर्ता ने **पार्श्वनाथ** की प्रतिमा का प्रकट होना बतलाया है। और यह एक असंगत-सी बात जान पड़ती है कि स्तुति तो किसी तीर्थंकर की जाय और उसे करते हुए प्रतिमा किसी दूसरे ही तीर्थंकर की प्रकट होवे। (पु.जै.वा.सू./प्रस्ता./पृ. १३०-१३१)।

''इस तरह भी उपलब्ध द्वात्रिंशिकाओं में उक्त १४ द्वात्रिंशिकाएँ, जो स्तुतिविषय तथा वीर की स्तुति से सम्बन्ध नहीं रखतीं, प्रबन्धवर्णित द्वात्रिंशिकाओं में परिगणित नहीं की जा सकतीं। और इसलिये **पं० सुखलाल जी** तथा **पं० बेचरदास जी** का प्रस्तावना में यह लिखना कि ''शुरुआत में **दिवाकर** (**सिद्धसेन**) के जीवनवृत्तान्त में स्तुत्यात्मक बत्तीसियों (द्वात्रिंशिकाओं) को ही स्थान देने की जरूरत मालूम हुई और इनके साथ में संस्कृत भाषा तथा पद्यसंख्या में समानता रखनेवाली, परन्तु स्तुत्यात्मक नहीं, ऐसी दूसरी घनी बत्तीसियाँ इनके जीवनवृत्तान्त में स्तुत्यात्मक कृतिरूप में ही दाखिल हो गईं और पीछे किसी ने इस हकीकत को देखा तथा खोजा ही नहीं कि कही जानेवाली बत्तीस अथवा उपलब्ध इक्कीस बत्तीसियों में कितनी और कौन स्तुतिरूप हैं और कौन-कौन स्तुतिरूप नहीं हैं'' और इस तरह सभी प्रबंध-रचयिता आचार्यों को ऐसी मोटी भूल के शिकार बतलाना कुछ भी जी को लगनेवाली बात मालूम नहीं होती। उसे उपलब्ध द्वात्रिंशिकाओं की संगति बिठलाने का प्रयत्नमात्र ही कहा जा सकता है, जो निराधार होने से समुचित प्रतीत नहीं होता। द्वात्रिंशिकाओं की इस सारी छान-बीन पर से निम्न बातें फलित होती हैं—

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

"१. **द्वात्रिंशकाएँ जिस क्रम से छपी हैं, उसी क्रम से निर्मित नहीं हुई हैं।**

"२. **उपलब्ध २१ द्वात्रिंशिकाएँ एक ही सिद्धसेन के द्वारा निर्मित हुई मालूम नहीं होतीं।**

"३. **न्यायावतार की गणना प्रबन्धोल्लिखित द्वात्रिंशिकाओं में नहीं की जा सकती।**

"४. **द्वात्रिंशिकाओं की संख्या में जो घट-बढ़ पाई जाती है वह, रचना के बाद हुई है और उसमें कुछ ऐसी घट-बढ़ भी शामिल है, जोकि किसी के द्वारा जान-बूझकर अपने किसी प्रयोजन के लिये की गई हो। ऐसी द्वात्रिंशिकाओं का पूर्ण रूप अभी अनिश्चित है।**

"५. **उपलब्ध द्वात्रिंशिकाओं का प्रबन्धों में वर्णित द्वात्रिंशिकाओं के साथ, जो सब स्तुत्यात्मक हैं और प्रायः एक ही स्तुतिग्रंथ 'द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिका' की अंग जान पड़ती हैं, सम्बन्ध ठीक नहीं बैठता। दोनों एक दूसरे से भिन्न तथा भिन्नकर्तृक प्रतीत होती हैं।**

"ऐसी हालत में किसी द्वात्रिंशिका का कोई वाक्य यदि कहीं उद्धृत मिलता है, तो उसे उसी द्वात्रिंशिका तथा उसके कर्त्ता तक ही सीमित समझना चाहिये, शेष द्वात्रिंशिकाओं में से किसी दूसरी द्वात्रिंशिका के विषय के साथ उसे जोड़कर उस पर से कोई दूसरी बात उस वक्त तक फलित नहीं की जानी चाहिये, जब तक कि यह साबित न कर दिया जाय कि वह दूसरी द्वात्रिंशिका भी उसी द्वात्रिंशिकाकार की कृति है। अस्तु।"(पु.जै.वा.सू./प्रस्ता./पृ. १३१-१३२)।

५
सन्मतिसूत्रकार सिद्धसेन केवल 'सन्मतिसूत्र' के कर्त्ता

"अब देखना यह है कि इन द्वात्रिंशिकाओं और न्यायावतार में से कौन-सी रचना सन्मतिसूत्र के कर्ता सिद्धसेन आचार्य की कृति है अथवा हो सकती है? इस विषय में पं० सुखलाल जी और पं० बेचरदास जी ने अपनी प्रस्तावना में यह प्रतिपादन किया है कि २१वीं द्वात्रिंशिका को छोड़कर शेष २० द्वात्रिंशिकाएँ, न्यायावतार और 'सन्मति' ये सब एक ही सिद्धसेन की कृतियाँ हैं, और ये सिद्धसेन वे हैं, जो उक्त श्वेताम्बरीय प्रबन्धों के अनुसार **वृद्धवादी** के शिष्य थे और **दिवाकर** नाम के साथ प्रसिद्धि को प्राप्त हैं। दूसरे श्वेताम्बर विद्वानों का बिना किसी जाँच-पड़ताल के अनुसरण करनेवाले कितने ही जैनेतर विद्वानों की भी ऐसी ही मान्यता है और यह मान्यता ही उस सारी भूल-भ्रान्ति का मूल है, जिसके कारण सिद्धसेन-विषयक जो भी परिचय-

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

लेख अब तक लिखे गये, वे सब प्रायः खिचड़ी बने हुए हैं, कितनी ही गलतफहमियों को फैला रहे हैं और उनके द्वारा सिद्धसेन के समयादिक का ठीक निर्णय नहीं हो पाता। इसी मान्यता को लेकर विद्वद्वर पं० सुखलाल जी की स्थिति सिद्धसेन के समय-सम्बन्ध में बराबर डाँवाडोल चली जाती है। आप प्रस्तुत सिद्धसेन का समय कभी विक्रम की छठी शताब्दी से पूर्व ५वीं शताब्दी[११] बतलाते हैं, कभी छठी शताब्दी का भी उत्तरवर्ती समय[१२] कह डालते हैं, कभी सन्दिग्धरूप में छठी या सातवीं शताब्दी[१३] निर्दिष्ट करते हैं और कभी ५वीं तथा ६ठीं शताब्दी का मध्यवर्ती काल[१४] प्रतिपादन करते हैं। और बड़ी मजे की बात यह है कि जिन प्रबन्धों के आधार पर सिद्धसेन दिवाकर का परिचय दिया जाता है, उनमें **न्यायावतार** का नाम तो किसी तरह एक प्रबन्ध में पाया भी जाता है, परन्तु **सिद्धसेन** की कृतिरूप में **सन्मतिसूत्र** का कोई उल्लेख कहीं भी उपलब्ध नहीं होता। इतने पर भी प्रबन्ध-वर्णित सिद्धसेन की कृतियों में उसे भी शामिल किया जाता है! यह कितने आश्चर्य की बात है, इसे विज्ञ पाठक स्वयं समझ सकते हैं।" (पु.जै.वा.सू./प्रस्ता./पृ. १३२-१३३)।

"ग्रन्थ की प्रस्तावना में पं० सुखलाल जी आदि ने, यह प्रतिपादन करते हुए कि "उक्त प्रबन्धों में वे द्वात्रिंशिकाएँ भी, जिनमें किसी की स्तुति नहीं है और जो अन्य दर्शनों तथा स्वदर्शन के मन्तव्यों के निरूपण तथा समालोचन को लिये हुए हैं, स्तुतिरूप में परिगणित हैं और उन्हें दिवाकर (सिद्धसेन) के जीवन में उनकी कृतिरूप से स्थान मिला है," इसे एक 'पहेली' ही बतलाया है, जो स्वदर्शन का निरूपण करनेवाले और द्वात्रिंशिकाओं से न उतरनेवाले (नीचा दर्जा न रखनेवाले) **सन्मतिप्रकरण** को दिवाकर के जीवनवृत्तान्त और उनकी कृतियों में स्थान क्यों नहीं मिला। परन्तु इस पहेली का कोई समुचित हल प्रस्तुत नहीं किया गया, प्रायः इतना कहकर ही सन्तोष धारण किया गया है कि "सन्मतिप्रकरण यदि बत्तीस श्लोकपरिमाण होता, तो वह प्राकृतभाषा में होते हुए भी दिवाकर के जीवनवृत्तान्त में स्थान पाई हुई संस्कृत-बत्तीसियों के साथ में परिगणित हुए बिना शायद ही रहता।" पहेली का यह हल कुछ भी महत्त्व नहीं रखता। प्रबन्धों से इसका कोई समर्थन नहीं होता और न इस बात का कोई पता ही चलता है कि उपलब्ध जो द्वात्रिंशिकाएँ स्तुत्यात्मक नहीं हैं, वे सब दिवाकर सिद्धसेन के जीवनवृत्तान्त में दाखिल हो गई हैं और उन्हें भी उन्हीं

---

११. सन्मतिप्रकरण/ प्रस्तावना / पृ. ३९,४३,६४,९४।
१२. ज्ञानबिन्दु-परिचय/ पृ. ६।
१३. सन्मतिप्रकरण के अँग्रेजी संस्करण का फोरवर्ड (Forword) और भारतीयविद्या में प्रकाशित 'श्रीसिद्धसेन दिवाकरना समयनो प्रश्न' नाम लेख (भारतीय विद्या/तृतीय भाग/ पृ. १५२)।
१४. 'प्रतिभामूर्ति सिद्धसेन दिवाकर' नामक लेख (भारतीयविद्या/तृतीय भाग/पृ. ११)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

सिद्धसेन की कृतिरूप से उनमें स्थान मिला है, जिससे उक्त प्रतिपादन का ही समर्थन होता, प्रबन्धवर्णित जीवनवृत्तान्त में उनका कहीं कोई उल्लेख ही नहीं है। एकमात्र **प्रभावकचरित** में **न्यायावतार** का जो असम्बद्ध, असमर्थित और असमञ्जस उल्लेख मिलता है, उस पर से उसकी गणना उस द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिका के अङ्गरूप में नहीं की जा सकती, जो सब जिन-स्तुतिपरक थी, वह एक जुदा ही स्वतन्त्र ग्रन्थ है, जैसा कि ऊपर व्यक्त किया जा चुका है। और **सन्मतिप्रकरण** का बत्तीस श्लोकपरिमाण न होना भी सिद्धसेन के जीवनवृत्तान्त से सम्बद्ध कृतियों में उसके परिगणित होने के लिये कोई बाधक नहीं कहा जा सकता, खासकर उस हालत में जब कि चवालीस पद्यसंख्यावाले **कल्याणमन्दिरस्तोत्र** को उनकी कृतियों में परिगणित किया गया है और **प्रभावकचरित** में इस पद्यसंख्या का स्पष्ट उल्लेख भी साथ में मौजूद है।[१५] **वास्तव में प्रबन्धों पर से यह ग्रन्थ उन सिद्धसेनदिवाकर की कृति मालूम ही नहीं होता, जो वृद्धवादी के शिष्य थे और जिन्हें आगमग्रन्थोंको संस्कृत में अनुवादित करने का अभिप्रायमात्र व्यक्त करने पर पारञ्चिकप्रायश्चित्त के रूप में बारह वर्ष तक श्वेताम्बरसंघ से बाहर रहने का कठोर दण्ड दिया जाना बतलाया जाता है। प्रस्तुत ग्रन्थ को उन्हीं सिद्धसेन की कृति बतलाना, यह सब बाद की कल्पना और योजना ही जान पड़ती है।**" (पु.जै.वा.सू./प्रस्ता./पृ. १३३)।

समान प्रतिभा का हेतु साधारणानैकान्तिक हेत्वाभास—"पं० सुखलाल जी ने प्रस्तावना में तथा अन्यत्र भी **द्वात्रिंशिकाओं, न्यायावतार** और सन्मतिसूत्र का एक-कर्तृत्व प्रतिपादन करने के लिये कोई खास हेतु प्रस्तुत नहीं किया, जिससे इन सब कृतियों को एक ही आचार्यकृत माना जा सके। प्रस्तावना में केवल इतना ही लिख दिया है कि "इन सबके पीछे रहा हुआ प्रतिभा का समान तत्त्व ऐसा मानने के लिये ललचाता है कि ये सब कृतियाँ किसी एक ही प्रतिभा के फल हैं।" यह सब कोई समर्थ युक्तिवाद न होकर एक प्रकार से अपनी मान्यता का प्रकाशनमात्र है, क्योंकि इन सभी ग्रन्थों पर से प्रतिभा का ऐसा कोई असाधारण समान तत्त्व उपलब्ध नहीं होता, जिसका अन्यत्र कहीं भी दर्शन न होता हो। **स्वामी समन्तभद्र** के मात्र **स्वयम्भूस्तोत्र** और **आप्तमीमांसा** ग्रन्थों के साथ इन ग्रन्थों की तुलना करते हुए स्वयं प्रस्तावनालेखकों ने दोनों में **पुष्कल साम्य** का होना स्वीकार किया है और दोनों आचार्यों की ग्रन्थनिर्माणादि-विषयक प्रतिभा का कितना ही चित्रण किया है। और भी **अकलङ्क-विद्यानन्दादि** कितने ही आचार्य ऐसे हैं जिनकी प्रतिभा इन ग्रन्थों के पीछे रहनेवाली प्रतिभा से कम नहीं है, तब प्रतिभा की समानता ऐसी कोई बात नहीं रह

---

१५. ततश्चतुश्चत्वारिंशद्वृत्तां स्तुतिमसौ जगौ।
कल्याणमन्दिरेत्यादिविख्यातां जिनशासने॥ १४४॥ वृद्धवादिप्रबन्ध/पृ. १०१।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

जाती, जिसकी अन्यत्र उपलब्धि न हो सके और इसलिये एकमात्र उसके आधार पर इन सब ग्रन्थों को, जिनके प्रतिपादन में परस्पर कितनी ही विभिन्नताएँ पाई जाती हैं, एक ही आचार्यकृत नहीं कहा जा सकता। जान पड़ता है **समानप्रतिभा** के उक्त लालच में पड़कर ही बिना किसी गहरी जाँच-पड़ताल के इन सब ग्रन्थों को एक ही आचार्यकृत मान लिया गया है, अथवा किसी साम्प्रदायिक मान्यता को प्रश्रय दिया गया है, जबकि वस्तुस्थिति वैसी मालूम नहीं होती। **गम्भीर गवेषणा और इन ग्रन्थों की अन्तःपरीक्षादि पर से मुझे इस बात का पता चला है कि सन्मतिसूत्र के कर्त्ता सिद्धसेन अनेक द्वात्रिंशिकाओं के कर्त्ता सिद्धसेन से भिन्न हैं।** यदि २१वीं द्वात्रिंशिका को छोड़कर शेष २० द्वात्रिंशिकाएँ एक ही सिद्धसेन की कृतियाँ हों, तो वे उनमें से किसी भी द्वात्रिंशिका के कर्त्ता नहीं हैं, अन्यथा कुछ द्वात्रिंशिकाओं के कर्त्ता हो सकते हैं। **न्यायावतार** के कर्ता **सिद्धसेन** की भी ऐसी ही स्थिति है। वे **सन्मतिसूत्र** के कर्त्ता **सिद्धसेन** से जहाँ भिन्न हैं, वहाँ कुछ **द्वात्रिंशिकाओं** के कर्ता **सिद्धसेन** से भी भिन्न हैं और उक्त २० द्वात्रिंशिकाएँ यदि एक से अधिक सिद्धसेनों की कृतियाँ हों, तो वे उनमें से कुछ के कर्ता हो सकते हैं, अन्यथा किसी के भी कर्ता नहीं बन सकते। **इस तरह 'सन्मतिसूत्र' के कर्ता, 'न्यायावतार' के कर्ता और कतिपय 'द्वात्रिंशिकाओं' के कर्ता तीन सिद्धसेन अलग-अलग हैं।** शेष द्वात्रिंशिकाओं के कर्ता इन्हीं में से कोई एक या दो अथवा तीनों हो सकते हैं और यह भी हो सकता है कि किसी द्वात्रिंशिका के कर्ता इन तीनों से भिन्न कोई अन्य ही हों। इन तीनों सिद्धसेनों का अस्तित्वकाल एक दूसरे से भिन्न अथवा कुछ अन्तराल को लिये हुए है और उनमें **प्रथम सिद्धसेन कतिपय द्वात्रिंशिकाओं के कर्ता, द्वितीय सिद्धसेन सन्मतिसूत्र के कर्ता** और **तृतीय सिद्धसेन न्यायावतार के कर्ता** हैं। नीचे अपने अनुसन्धान-विषयक इन्हीं सब बातों को संक्षेप में स्पष्ट करके बतलाया जाता है—

५.१. सन्मतिसूत्रकार सिद्धसेन अभेदवाद (एकोपयोगवाद) के पुरस्कर्त्ता

"सन्मतिसूत्र के द्वितीय काण्ड में केवली के ज्ञान-दर्शन-उपयोगों की क्रमवादिता और युगपद्वादिता में दोष दिखाते हुए अभेदवादिता अथवा एकोपयोगवादिता का स्थापन किया है। साथ ही ज्ञानावरण और दर्शनावरण का युगपत् क्षय मानते हुए भी यह बतलाया है कि दो उपयोग एक साथ कहीं नहीं होते और केवली में क्रमशः भी नहीं होते। इन ज्ञान और दर्शन उपयोगों का भेद मनःपर्ययज्ञान पर्यन्त अथवा छद्मस्थावस्था तक ही चलता है, केवलज्ञान हो जाने पर दोनों में कोई भेद नहीं रहता। तब ज्ञान कहो अथवा दर्शन एक ही बात है, दोनों में कोई विषयभेद चरितार्थ नहीं होता। इसके लिये अथवा आगमग्रन्थों से अपने इस कथन की सङ्गति बिठलाने के लिये दर्शन की **'अर्थविशेषरहित निराकर सामान्यग्रहणरूप'** जो परिभाषा है, उसे भी बदल कर

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

रक्खा है अर्थात् यह प्रतिपादन किया है कि '**अस्पृष्ट तथा अविषयरूप पदार्थ में अनुमानज्ञान को छोड़कर जो ज्ञान होता है, वह दर्शन है।**' इस विषय से सम्बन्ध रखनेवाली कुछ गाथाएँ नमूने के तौर पर इस प्रकार हैं—

मणपज्जवणाणंतो णाणस्स य दरिसणस्स य विसेसो।
केवलणाणं पुण दंसणं ति ण णाणं ति य समाणं॥ ३॥

केई भणंति 'जइया जाणइ तइया ण पासइ जिणो' त्ति।
सुत्तमवलंबमाणा तित्थयरासायणाभीरू ॥ ४॥

केवलणाणावरणक्खयजायं केवलं जहा णाणं।
तह दंसणं पि जुज्जइ णियआवरणक्खयस्संते॥ ५॥

सुत्तम्मि चेव 'साई अपज्जवसियं' ति केवलं वुत्तं।
सुत्तासायणभीरूहि तं च दट्ठव्वयं होइ॥ ७॥

संतम्मि केवले दंसणम्मि णाणस्स संभवो णत्थि।
केवलणाणम्मि य दंसणस्स तम्हा सणिहणाइं॥ ८॥

दंसणणाणावरणक्खए समाणम्मि कस्स पुव्वअरं।
होज्ज समं उप्पाओ हंदि दुवे णत्थि उवओगा॥ ९॥

अण्णायं पासंतो अदिट्ठं च अरहा वियाणंतो।
किं जाणइ किं पासइ कह सव्वण्णू त्ति वा होइ॥ १३॥

णाणं अप्पुट्ठे अविसए य अत्थम्मि दंसणं होइ।
मोत्तूण लिंगओ जं अणागयाईयविसएसु॥ २५॥

जं अप्पुट्ठे भावे जाणइ पासइ य केवली णियमा।
तम्हा तं णाणं दंसणं च अविसेसओ सिद्धं॥ ३०॥

"इसी से सन्मतिसूत्र के कर्ता सिद्धसेन अभेदवाद के पुरस्कर्ता माने जाते हैं। टीकाकार **अभयदेवसूरि** और **ज्ञानबिन्दु** के कर्ता **उपाध्याय यशोविजय** ने भी ऐसा ही प्रतिपादन किया है। ज्ञानबिन्दु में तो एतद्विषयक सन्मति-गाथाओं की व्याख्या करते हुए उनके इस वाद को **श्रीसिद्धसेनोपज्ञनव्यमतं** (सिद्धसेन की अपनी ही सूझ-बूझ अथवा उपजरूप नया मत) तक लिखा है। ज्ञानबिन्दु की परिचयात्मक प्रस्तावना के आदि में **पं० सुखलाल जी** ने भी ऐसी ही घोषणा की है।" (पु.जै.वा.सू./ प्रस्ता./ पृ.१३३-१३५)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

५.२. प्रथम-द्वितीय-पंचम द्वात्रिंशिकाएँ युगपद्वादप्रतिपादक

"पहली, दूसरी और पाँचवीं द्वात्रिंशिकाएँ युगपद्वाद की मान्यता को लिये हुए हैं, जैसा कि उनके निम्न वाक्यों से प्रकट है—

क

जगन्नैकावस्थं युगपदखिलाऽनन्तविषयं
यदेतत्प्रत्यक्षं तव न च भवान् कस्यचिदपि।
अनेनैवाऽचिन्त्यप्रकृतिरससिद्धेस्तु विदुषां
समीक्ष्यैतद्द्वारं तव गुण-कथोत्का वयमपि॥ १/३२॥

ख

नाऽर्थान् विवित्ससि न वेत्स्यसि नाऽप्यवेत्सी-
र्न ज्ञातवानसि न तेऽच्युत! वेद्यमस्ति।
त्रैकाल्य-नित्य-विषमं युगपच्च विश्वं
पश्यस्यचिन्त्य-चरिताय नमोऽस्तु तुभ्यम्॥ २/३०॥

ग

अनन्तमेकं युगपत् त्रिकालं शब्दादिभिर्निप्रतिघातवृत्ति॥ ५/२१॥

दुरापमाप्तं यदचिन्त्य-भूति-ज्ञानं त्वया जन्म-जराऽन्तकर्तृ।
तेनाऽसि लोकानभिभूय सर्वान्सर्वज्ञ! लोकोत्तमतामुपेतः॥ ५/२२॥

"इन पद्यों में ज्ञान और दर्शन के जो भी त्रिकालवर्ती अनन्त विषय हैं, उन सबको युगपत् जानने-देखने की बात कही गई है अर्थात् त्रिकालगत विश्व के सभी साकार-निराकार, व्यक्त-अव्यक्त, सूक्ष्म-स्थूल, दृष्ट-अदृष्ट, ज्ञात-अज्ञात, व्यवहित-अव्यवहित आदि पदार्थ अपनी-अपनी अनेक-अनन्त अवस्थाओं अथवा पर्यायों-सहित वीरभगवान् के युगपत् प्रत्यक्ष हैं, ऐसा प्रतिपादन किया गया है। यहाँ प्रयुक्त हुआ **युगपत्** शब्द अपनी खास विशेषता रखता है और वह ज्ञान-दर्शन के यौगपद्य का उसी प्रकार द्योतक है, जिस प्रकार स्वामी समन्तभद्रप्रणीत आप्तमीमांसा (देवागम) के "**तत्त्वज्ञानं प्रमाणं ते युगपत्सर्वभासनम्**" (का. १०१) इस वाक्य में प्रयुक्त हुआ **युगपत्** शब्द, जिसे ध्यान में लेकर और पादटिप्पणी में पूरी कारिका को उद्धृत करते हुए पं० सुखलाल जी ने **ज्ञानबिन्दु** के परिचय में लिखा है—"दिगम्बराचार्य समन्तभद्र ने भी अपनी **आप्तमीमांसा** में एकमात्र **यौगपद्यपक्ष** का उल्लेख किया है।" साथ ही, यह भी बतलाया है कि **भट्ट अकलङ्क** ने इस कारिकागत अपनी **अष्टशती** व्याख्या में **यौगपद्य-पक्ष** का स्थापन करते हुए **क्रमिकपक्ष** का, संक्षेप में पर स्पष्टरूप में,

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

खण्डन किया है, जिसे पादटिप्पणी में निम्न प्रकार से उद्धृत किया है—

''तज्ज्ञानदर्शनयोः क्रमवृत्तौ हि सर्वज्ञत्वं कादाचित्कं स्यात्। कुतस्तत्सिद्धिरिति चेत् सामान्य-विशेष-विषययोर्विगतावरणयोरयुगपत्प्रतिभासायोगात् प्रतिबन्धकान्तराऽभावात्।''

''ऐसी हालत में इन तीन द्वात्रिंशिकाओं के कर्ता वे सिद्धसेन प्रतीत नहीं होते, जो सन्मतिसूत्र के कर्ता और अभेदवाद के प्रस्थापक अथवा पुरस्कर्ता हैं, बल्कि वे सिद्धसेन जान पड़ते हैं, जो केवली के ज्ञान और दर्शन का युगपत् होना मानते थे। ऐसे एक **युगपद्वादी सिद्धसेन** का उल्लेख विक्रम की ८वीं-९वीं शताब्दी के विद्वान् **आचार्य हरिभद्र** ने अपनी **नन्दीवृत्ति** में किया है। नन्दीवृत्ति में **'केई भणंति जुगवं जाणइ पासइ य केवली नियमा'** इत्यादि दो गाथाओं को उद्धृत करके, जो कि **जिन-भद्रक्षमाश्रमण** के **विशेषणवती** ग्रन्थ की हैं, उनकी व्याख्या करते हुए लिखा है—

''केचन सिद्धसेनाचार्यादयः भणंति, किं? 'युगपद्' एकस्मिन्नेव काले जानाति पश्यति च, कः? केवली, न त्वन्यः, नियमात् नियमेन।''

''नन्दीसूत्र के ऊपर मलयगिरिसूरि ने जो टीका लिखी है, उसमें उन्होंने भी युगपद्वाद का पुरस्कर्ता सिद्धसेनाचार्य को बतलाया है। परन्तु उपाध्याय यशोविजय ने, जिन्होंने सिद्धसेन को अभेदवाद का पुरस्कर्ता बतलाया है, ज्ञानबिन्दु में यह प्रकट किया है कि ''नन्दीवृत्ति में सिद्धसेनाचार्य का जो युगपत् उपयोगवादित्व कहा गया है, वह **अभ्युपगमवाद** के अभिप्राय से है, न कि स्वतन्त्रसिद्धान्त के अभिप्राय से, क्योंकि **क्रमोपयोग** और **अक्रम (युगपत्) उपयोग** के पर्यनुयोगाऽनन्तर ही उन्होंने **सन्मति** में अपने पक्ष का उद्भावन किया है,''[१६] जो कि ठीक नहीं है। मालूम होता है उपाध्याय जी की दृष्टि में सन्मति के कर्ता सिद्धसेन ही एकमात्र सिद्धसेनाचार्य के रूप में रहे हैं और इसी से उन्होंने सिद्धसेन-विषयक दो विभिन्न वादों के कथनों से उत्पन्न हुई असङ्गति को दूर करने का यह प्रयत्न किया है, जो ठीक नहीं है। चुनाँचे **पं० सुखलाल जी** ने उपाध्याय जी के इस कथन को कोई महत्त्व न देते हुए और हरिभद्र जैसे बहुश्रुत आचार्य के इस प्राचीनतम उल्लेख की महत्ता का अनुभव करते हुए ज्ञानबिन्दु के परिचय (पृ. ६०) में अन्त को यह लिखा है कि **''समान नामवाले अनेक आचार्य होते आए हैं। इसलिये असम्भव नहीं कि सिद्धसेनदिवाकर से भिन्न कोई दूसरे भी सिद्धसेन हुए हों, जो कि युगपद्वाद के समर्थक हुए हों या माने जाते हों।''** वे

१६. ''यत्तु युगपदुपयोगवादित्वं सिद्धसेनाचार्याणां नन्दिवृत्तावुक्तं तदभ्युपगमवादाभिप्रायेण, न तु स्वतन्त्रसिद्धान्ताभिप्रायेण, क्रमाऽक्रमोपयोगद्वयपर्यनुयोगानन्तरमेव स्वपक्षस्य **सम्मतौ** उद्भावितत्वादिति द्रष्टव्यम्।'' ज्ञानबिन्दु / पृ. ३३।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

दूसरे सिद्धसेन अन्य कोई नहीं, उक्त तीनों द्वात्रिंशिकाओं में से किसी के भी कर्ता होने चाहिये। अतः इन तीनों द्वात्रिंशिकाओं को सन्मतिसूत्र के कर्ता आचार्य सिद्धसेन की जो कृति माना जाता है, वह ठीक और सङ्गत प्रतीत नहीं होता। इनके कर्ता दूसरे ही सिद्धसेन हैं, जो केवली के विषय में युगपद्-उपयोगवादी थे और जिनकी युगपद्-उपयोगवादिता का समर्थन हरिभद्राचार्य के उक्त प्राचीन उल्लेख से भी होता है।" (पु.जै.वा.सू./प्रस्ता./पृ. १३५-१३७)।

५.३. निश्चयद्वात्रिंशिका एकोपयोगवाद-विरोधी, युगपद्वादी

"१९वीं निश्चयद्वात्रिंशिका में "**सर्वोपयोग-द्वैविध्यमनेनोक्तमनक्षरम्**" इस वाक्य के द्वारा यह सूचित किया गया है कि 'सब जीवों के उपयोग का द्वैविध्य अविनश्वर है।' अर्थात् कोई भी जीव संसारी हो अथवा मुक्त, छद्मस्थज्ञानी हो या केवली, सभी के ज्ञान और दर्शन दोनों प्रकार के उपयोगों का सत्त्व होता है। यह दूसरी बात है कि एक में वे क्रम से प्रवृत्त (चरितार्थ) होते हैं और दूसरे में आवरणाभाव के कारण युगपत्। इससे उस एकोपयोगवाद का विरोध आता है, जिसका प्रतिपादन सन्मतिसूत्र में केवली को लक्ष्य में लेकर किया गया है और जिसे अभेदवाद भी कहा जाता है। ऐसी स्थिति में यह १९वीं द्वात्रिंशिका भी सन्मतिसूत्र के कर्ता सिद्धसेन की कृति मालूम नहीं होती।" (पु.जै.वा.सू./प्रस्ता./पृ. १३७)।

५.४. निश्चयद्वात्रिंशिका मति-श्रुतभेद-अवधि-मनःपर्ययभेद-विरोधी

"उक्त निश्चयद्वात्रिंशिका १९ में श्रुतज्ञान को मतिज्ञान से अलग नहीं माना है, लिखा है कि "मतिज्ञान से अधिक अथवा भिन्न श्रुतज्ञान कुछ नहीं है, श्रुतज्ञान को अलग मानना व्यर्थ तथा अतिप्रसङ्ग दोष को लिये हुए है।" और इस तरह मतिज्ञान तथा श्रुतज्ञान का अभेद प्रतिपादन किया है। इसी तरह अवधिज्ञान से भिन्न मनःपर्यायज्ञान की मान्यता का भी निषेध किया है, लिखा है कि "या तो द्वीन्द्रियादिक जीवों के भी, जो कि प्रार्थना और प्रतिघात के कारण चेष्टा करते हुए देखे जाते हैं, मनःपर्यायविज्ञान का मानना युक्त होगा अन्यथा मनःपर्यायज्ञान कोई जुदी वस्तु नहीं है।" इन दोनों मन्तव्यों के प्रतिपादक वाक्य इस प्रकार हैं—

वैयर्थ्याऽतिप्रसंगाभ्यां न मत्यधिकं श्रुतम्।
सर्वेभ्यः केवलं चक्षुस्तमःक्रम-विवेककृत्॥ १३॥

प्रार्थना-प्रतिघाताभ्यां चेष्टन्ते द्वीन्द्रियादयः।
मनःपर्यायविज्ञानं युक्तं तेषु न वाऽन्यथा॥ १७॥

(पु. जै. वा. सू. / प्रस्ता. / पृ. १३७)

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

५.५. सन्मतिसूत्र मतिज्ञान-श्रुतज्ञान-भेदसमर्थक

"यह सब कथन सन्मतिसूत्र के विरुद्ध है, क्योंकि उसमें श्रुतज्ञान और मनःपर्ययज्ञान दोनों को अलग ज्ञानों के रूप में स्पष्टरूप से स्वीकार किया गया है, जैसा कि उसके द्वितीय काण्डगत[१७] निम्न वाक्यों से प्रकट है—

मणपज्जवणाणंतो णाणस्स य दरिसणस्स य विसेसो॥ ३॥

जेण मणोविसयगयाण दंसणं णत्थि दव्वजायाणं।
तो मणपज्जवणाणं णियमा णाणं तु णिद्दिट्ठं॥ १९॥

मणपज्जवणाणं दंसणं ति तेणेह होइ ण य जुत्तं।
भण्णइ णाणं णोइंदियम्मि ण घडादयो जम्हा॥ २६॥

मइ-सुय-णाणणिमित्तो छडमत्थे होइ अत्थउवलंभो।
एगयरम्मि वि तेसिं ण दंसणं दंसणं कत्तो?॥ २७॥

जं पच्चक्खग्गहणं णं इंति सुयणाण-सम्मिया अत्था।
तम्हा दंसणसद्दो ण होइ सयले वि सुयणाणे॥ २८॥

५.६. न्यायावतार मतिज्ञान-श्रुतज्ञानादि-भेदसमर्थक

"ऐसी हालत में यह और भी स्पष्ट हो जाता है कि निश्चयद्वात्रिंशिका (१९) उन्हीं सिद्धसेनाचार्य की कृति नहीं है, जो कि सन्मतिसूत्र के कर्ता हैं। दोनों के कर्ता सिद्धसेन नाम की समानता को धारण करते हुए भी एक दूसरे से एकदम भिन्न हैं। साथ ही, यह कहने में भी कोई सङ्कोच नहीं होता कि न्यायावतार के कर्ता सिद्धसेन भी निश्चयद्वात्रिंशिका के कर्ता से भिन्न हैं, क्योंकि उन्होंने श्रुतज्ञान के भेद को स्पष्टरूप से माना है और उसे अपने ग्रन्थ में शब्दप्रमाण अथवा आगम (श्रुत-शास्त्र) प्रमाण के रूप में रक्खा है, जैसा कि न्यायावतार के निम्न वाक्यों से प्रकट है—

दृष्टेष्टाऽव्याहताद्वाक्यात्परमार्थाऽभिधायिनः।
तत्त्वग्राहितयोत्पन्नं मानं शाब्दं प्रकीर्तितम्॥ ८॥

आप्तोपज्ञमनुल्लंघ्यमदृष्टेष्टविरोधकम्।
तत्त्वोपदेशकृत्सार्वं शास्त्रं कापथ-घट्टनम्॥ ९॥[१८]

नयानामेकनिष्ठानां प्रवृत्तेः श्रुतवर्त्मनि।
सम्पूर्णार्थविनिश्चायि स्याद्वादश्रुतमुच्यते॥ ३०॥

---

१७. तृतीयकाण्ड में भी आगमश्रुतज्ञान को प्रमाणरूप में स्वीकार किया है।

१८. यह पद्य मूल में स्वामी समन्तभद्रकृत 'रत्नकरण्ड' का है, वहीं से उद्धृत किया गया है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

है कि वे उक्त द्वात्रिंशिका के कर्ता नहीं हैं, उसके कर्ता कोई दूसरे ही सिद्धसेन होने चाहिये। उपाध्याय यशोविजय जी ने 'द्वात्रिंशिका' का 'न्यायावतार' और 'सन्मति' के साथ जो उक्त विरोध बैठता है, उसके सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा।

"यहाँ इतना और भी जान लेना चाहिये कि श्रुत की अमान्यतारूप इस द्वात्रिंशिका के कथन का विरोध न्यायावतार और सन्मति के साथ ही नहीं है, बल्कि प्रथम द्वात्रिंशिका के साथ भी है, जिसके '**सुनिश्चितं नः**' इत्यादि ३०वें पद्य में '**जगत्प्रमाणं जिनवाक्य-विप्रुषः**' जैसे शब्दों द्वारा अर्हत्प्रवचनरूप श्रुत को प्रमाण माना गया है। (पु.जै.वा.सू./ प्रस्ता./पृ.१३७-१३९)।

५.७. निश्चयद्वात्रिंशिका में ज्ञानदर्शनचारित्र व्यस्तरूप से मोक्षमार्ग, सन्मतिसूत्र में समस्तरूप से

"निश्चयद्वात्रिंशिका की दो बातें और भी यहाँ प्रकट कर देने की हैं, जो सन्मति के साथ स्पष्ट विरोध रखती हैं और वे निम्न प्रकार हैं—

ज्ञान-दर्शन-चारित्राण्युपायाः शिवहेतवः।
अन्योऽन्य-प्रतिपक्षत्वाच्छुद्धावगम-शक्तयः॥ १॥

"इस पद्य में ज्ञान, दर्शन तथा चारित्र को मोक्ष-हेतुओं के रूप में तीन उपाय (मार्ग) बतलाया है, तीनों को मिलाकर मोक्ष का एक उपाय निर्दिष्ट नहीं किया, जैसा कि तत्त्वार्थसूत्र के प्रथमसूत्र में **मोक्षमार्गः** इस एक वचनात्मक पद के प्रयोग-द्वारा किया गया है। अतः ये तीनों यहाँ समस्तरूप में नहीं, किन्तु व्यस्त (अलग-अलग) रूप में मोक्ष के मार्ग निर्दिष्ट हुए हैं और उन्हें एक दूसरे का प्रतिपक्षी लिखा है। साथ ही तीनों **सम्यक्** विशेषण से शून्य हैं और दर्शन को ज्ञान के पूर्व न रखकर उसके अनन्तर रक्खा गया है, जो कि समूची **द्वात्रिंशिका** पर से श्रद्धान अर्थ का वाचक भी प्रतीत नहीं होता। यह सब कथन सन्मतिसूत्र के निम्न वाक्यों के विरुद्ध जाता है, जिनमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्रतिपत्ति से सम्पन्न भव्यजीव को संसार के दुःखों का अन्तकर्तारूप में उल्लेखित किया है और कथन को हेतुवाद-सम्मत बतलाया है (३/४४) तथा दर्शन शब्द का अर्थ जिनप्रणीत पदार्थों का श्रद्धान ग्रहण किया है। साथ ही सम्यग्दर्शन के उत्तरवर्ती सम्यग्ज्ञान को सम्यग्दर्शन से युक्त बतलाते हुए वह इस तरह सम्यग्दर्शन रूप भी है, ऐसा प्रतिपादन किया है (२/३२, ३३)—

एवं जिणपण्णत्ते सद्दहमाणस्स भावओ भावे।
पुरिसस्साभिणिबोहे दंसणसद्दो हवइ जुत्तो॥ २/३२॥

सम्मण्णाणे णियमेण दंसणं उ भयणिज्जं।
सम्मण्णाणं च इमं ति अत्थओ होइ उववण्णं॥ २/३३॥

भविओ सम्मद्दंसणणाणचरित्तपडिवत्तिसंपण्णो।
णियमा दुक्खंतकडो त्ति लक्खणं हेउवायस्स॥ ३/४४॥

''निश्चयद्वात्रिंशिका का यह कथन दूसरी कुछ द्वात्रिंशिकाओं के भी विरुद्ध पड़ता है, जिसके नमूने इस प्रकार हैं—

क्रियां च संज्ञानवियोगनिष्फलां क्रियाविहीनां च विबोधसम्पदम्।
निरस्यता क्लेशसमूहशान्तये त्वया शिवायालिखितेव पद्धतिः॥ १/२९॥

यथाऽगद-परिज्ञानं नालमाऽऽमय-शान्तये।
अचारित्रं तथा ज्ञानं न बुद्ध्यध्यव्यवसायतः॥ १७/२७॥

''इनमें से पहली द्वात्रिंशिका के उद्धरण में यह सूचित किया है कि ''वीरजिनेन्द्र ने सम्यग्ज्ञान से रहित क्रिया (चारित्र) को और क्रिया से विहीन सम्यग्ज्ञान की सम्पदा को क्लेशसमूह की शान्ति अथवा शिवप्राप्ति के लिये निष्फल एवं असमर्थ बतलाया है और इसलिये ऐसी क्रिया तथा ज्ञानसम्पदा का निषेध करते हुए ही उन्होंने मोक्षपद्धति का निर्माण किया है।'' और १७वीं द्वात्रिंशिका के उद्धरण में बतलाया है कि ''जिस प्रकार रोगनाशक औषध का परिज्ञान मात्र रोग की शान्ति के लिए समर्थ नहीं होता, उसी प्रकार चारित्ररहित ज्ञान को समझना चाहिए , वह भी अकेला भवरोग को शान्त करने में समर्थ नहीं है।'' ऐसी हालत में ज्ञान, दर्शन और चारित्र को अलग-अलग मोक्ष की प्राप्ति का उपाय बतलाना इन द्वात्रिंशिकाओं के भी विरुद्ध ठहरता है।'' (पु.जै.वा.सू/प्रस्ता./पृ. १३९-१४०)।

५.८. निश्चयद्वात्रिंशिका में धर्म-अधर्म-आकाश द्रव्य अमान्य, सन्मतिसूत्र में मान्य

प्रयोग-विस्रसा-कर्म तदभावस्थितिस्तथा।
लोकानुभाववृत्तान्तः किं धर्माऽधर्मयोः फलम्॥ १९/२४॥

आकाशमवगाहाय तदनन्या दिगन्यथा।
तावप्येवमनुच्छेदात्ताभ्यां वाऽन्यमुदाहृतम्॥ १९/२५॥

प्रकाशवदनिष्टं स्यात्साध्ये नार्थस्तु न श्रमः।
जीव-पुद्गलयोरेव परिशुद्धः परिग्रहः॥ १९/२६॥

''इन पद्यों में द्रव्यों की चर्चा करते हुए धर्म, अधर्म और आकाश द्रव्यों की मान्यता को निरर्थक ठहराया है तथा जीव और पुद्गल का ही परिशुद्ध परिग्रह करना चाहिए अर्थात् इन्हीं दो द्रव्यों को मानना चाहिए, ऐसी प्रेरणा की है। यह सब कथन भी सन्मतिसूत्र के विरुद्ध है, क्योंकि उसके तृतीय काण्ड में द्रव्यगत उत्पाद तथा व्यय (नाश) के प्रकारों को बतलाते हुए उत्पाद के जो प्रयोगजनित (प्रयत्नजन्य)

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

तथा वैस्रसिक (स्वाभाविक) ऐसे दो भेद किये हैं, उनमें वैस्रसिक उत्पाद के भी समुदायकृत तथा ऐकत्विक ऐसे दो भेद निर्दिष्ट किये हैं, और फिर यह बतलाया है कि ऐकत्विक उत्पाद आकाशादिक तीन द्रव्यों (आकाश, धर्म, अधर्म) में परनिमित्त से होता है और इसलिये अनियमित होता है। नाश की भी ऐसी ही विधि बतलाई है। इससे सन्मतिकार सिद्धसेन की इन तीन अमूर्तिक द्रव्यों के, जो कि एक-एक हैं, अस्तित्व-विषय में मान्यता स्पष्ट है। यथा—

उप्पाओ दुवियप्पो पओगजणिओ व विस्ससा चेव।
तत्थ उ पओगजणिओ समुदयवायो अपरिसुद्धो॥ ३२॥

साभाविओ वि समुदयकओ व्व एगत्तिओ व्व होज्जाहि।
आगासाईआणं तिण्हं परपच्चओऽणियमा॥ ३३॥

विगमस्स वि एस विही समुदयजणियम्मि सो उ दुवियप्पो।
समुदयविभागमेत्तं अत्थंतरभावगमणं च॥ ३४॥

"इस तरह यह निश्चयद्वात्रिंशिका कतिपय द्वात्रिंशिकाओं, न्यायावतार और सन्मति के विरुद्ध प्रतिपादनों को लिये हुए है। **सन्मति** के विरुद्ध तो वह सबसे अधिक जान पड़ती है और इसलिये **किसी तरह भी सन्मतिकार सिद्धसेन की कृति नहीं कही जा सकती।**" (पु.जै.वा.सू./प्रस्ता./पृ. १३९-१४०)।

५.९. निश्चयद्वात्रिंशिकाकार सिद्धसेन के लिए 'द्वेष्य श्वेतपट' विशेषण का प्रयोग

"यही एक द्वात्रिंशिका ऐसी है जिसके अंत में उसके कर्ता सिद्धसेनाचार्य को अनेक प्रतियों में श्वेतपट (श्वेताम्बर) विशेषण के साथ 'द्वेष्य' विशेषण से भी उल्लेखित किया गया है, जिसका अर्थ द्वेषयोग्य, विरोधी अथवा शत्रु का होता है और यह विशेषण सम्भवतः प्रसिद्ध जैन सैद्धान्तिक मान्यताओं के विरोध के कारण ही उन्हें अपने ही सम्प्रदाय के किसी असहिष्णु विद्वान्-द्वारा दिया गया जान पड़ता है। जिस पुष्पिकावाक्य के साथ इस विशेषण पद का प्रयोग किया गया है, वह भाण्डारकर इन्स्टिट्यूट, पूना और एशियाटिक सोसाइटी बङ्गाल (कलकत्ता) की प्रतियों में निम्न प्रकार से पाया जाता है—

"**द्वेष्यश्वेतपटसिद्धसेनाचार्यस्य कृतिः निश्चयद्वात्रिंशिकैकोनविंशतिः।**"

"दूसरी किसी द्वात्रिंशिका के अन्त में ऐसा कोई पुष्पिकावाक्य नहीं है। पूर्व की १८ और उत्तरवर्ती १ ऐसे १९ द्वात्रिंशिकाओं के अन्त में तो कर्ता का नाम तक भी नहीं दिया है। द्वात्रिंशिका की संख्यासूचक एक पंक्ति **इति** शब्द से युक्त अथवा

फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

वियुक्त और कहीं-कहीं द्वात्रिंशिका के नाम के साथ भी दी हुई है।'' (पु.जै.वा.सू./ प्रस्ता./पृ. १४०-१४१)।

''द्वात्रिंशिकाओं की उपर्युक्त स्थिति में यह कहना किसी तरह भी ठीक प्रतीत नहीं होता कि उपलब्ध सभी द्वात्रिंशिकाएँ अथवा २१वीं को छोड़कर बीस द्वात्रिंशिकाएँ सन्मतिकार सिद्धसेन की ही कृतियाँ हैं, क्योंकि पहली, दूसरी, पाँचवी और उन्नीसवीं ऐसी चार द्वात्रिंशिकाओं की बाबत हम ऊपर देख चुके हैं कि वे **सन्मति** के विरुद्ध जाने के कारण सन्मतिकार की कृतियाँ नहीं बनतीं। शेष द्वात्रिंशिकाएँ यदि इन्हीं चार द्वात्रिंशिकाओं के कर्ता सिद्धसेनों में से किसी एक या एक से अधिक सिद्धसेनों की रचनाएँ हैं, तो भिन्न व्यक्तित्व के कारण उनमें से कोई भी सन्मतिकार सिद्धसेन की कृति नहीं हो सकती। और यदि ऐसा नहीं है, तो उनमें से अनेक द्वात्रिंशिकाएँ सन्मतिकार सिद्धसेन की भी कृति हो सकती हैं, परन्तु हैं और अमुक अमुक हैं यह निश्चितरूप में उस वक्त तक नहीं कहा जा सकता, जब तक इस विषय का कोई स्पष्ट प्रमाण सामने न आ जाए। (पु.जै.वा.सू./ प्रस्ता./ पृ. १४१)।

५.१०. न्यायावतार सन्मतिसूत्र से एक शताब्दी पश्चात् की रचना

''अब रही न्यायावतार की बात, यह ग्रन्थ सन्मतिसूत्र से कोई एक शताब्दी से भी अधिक बाद का बना हुआ है, क्योंकि इस पर **समन्तभद्रस्वामी** के उत्तरकालीन **पात्रस्वामी** (**पात्रकेसरी**) जैसे जैनाचार्यों का ही नहीं, किन्तु **धर्मकीर्ति** और **धर्मोत्तर** जैसे बौद्धाचार्यों का भी स्पष्ट प्रभाव है। **डॉ० हर्मन जैकोबी** के मतानुसार[१९] **धर्मकीर्ति** ने **दिग्नाग** के प्रत्यक्षलक्षण[२०] में **कल्पनापोढ** विशेषण के साथ **अभ्रान्त** विशेषण की वृद्धि कर उसे अपने अनुरूप सुधारा था अथवा प्रशस्तरूप दिया था और इसलिये ''**प्रत्यक्षं कल्पनापोढमभ्रान्तम्**'' यह प्रत्यक्ष का धर्मकीर्ति-प्रतिपादित प्रसिद्ध लक्षण है, जो उनके **न्यायबिन्दु** ग्रन्थ में पाया जाता है और जिसमें **अभ्रान्त** पद अपनी खास विशेषता रखता है। **न्यायावतार** के चौथे पद्य में प्रत्यक्ष का लक्षण, **अकलङ्कदेव** की तरह '**प्रत्यक्षं विशदं ज्ञानं**' न देकर, जो ''**अपरोक्षतयार्थस्य ग्राहकं ज्ञानमीदृशं प्रत्यक्षम्**'' दिया है और अगले पद्य में, अनुमान का लक्षण देते हुए , '**तदभ्रान्तप्रमाणत्वात्समक्षवत्**' वाक्य के द्वारा उसे (प्रत्यक्ष को) 'अभ्रान्त' विशेषण से विशेषित भी सूचित किया है। उससे यह साफ ध्वनित होता है कि **सिद्धसेन** के सामने-उनके लक्ष्य में-**धर्मकीर्ति**

---

१९. देखिए , 'समराइच्चकहा' की जैकोबीकृत प्रस्तावना तथा न्यायावतार की डॉ.पी.एल. वैद्यकृत प्रस्तावना।

२०. ''प्रत्यक्षं कल्पनापोढं नामजात्याद्यसंयुतम्।'' प्रमाणसमुच्चय।
''प्रत्यक्षं कल्पनापोढं यज्ज्ञानं नामजात्यादिकल्पनारहितम्।'' न्यायप्रवेश।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

का उक्त लक्षण भी स्थित था और उन्होंने अपने लक्षण में, **ग्राहक** पद के प्रयोग-द्वारा जहाँ प्रत्यक्ष को व्यवसायात्मक ज्ञान बतलाकर **धर्मकीर्ति** के **कल्पनापोढ** विशेषण का निरसन अथवा वेधन किया है, वहाँ उनके **अभ्रान्त** विशेषण को प्रकारान्तर से स्वीकार भी किया है। न्यायावतार के टीकाकार **सिद्धर्षि** भी **ग्राहकं** पद के द्वारा बौद्धों (धर्मकीर्ति) के उक्त लक्षण का निरसन होना बतलाते हैं। यथा—

''ग्राहकमिति च निर्णायकं द्रष्टव्यं, निर्णयाभावेऽर्थग्रहणायोगात्। तेन यत् ताथागतैः प्रत्यपादि 'प्रत्यक्षं कल्पनापोढमभ्रान्तम्' (न्या.बि.४) **इति, तदपास्तं भवति। तस्य युक्तिरिक्तत्वात्।''**

''इसी तरह **'त्रिरूपाल्लिङ्गाद्यदनुमेये ज्ञानं तदनुमानं'** यह **धर्मकीर्ति** के अनुमान का लक्षण है। इसमें **त्रिरूपात्** पद के द्वारा लिङ्ग को त्रिरूपात्मक बतलाकर अनुमान के साधारण लक्षण को एक विशेषरूप दिया गया है। यहाँ इस अनुमानज्ञान को अभ्रान्त या भ्रान्त ऐसा कोई विशेषण नहीं दिया गया, परन्तु न्यायबिन्दु की टीका में धर्मोत्तर ने प्रत्यक्ष-लक्षण की व्याख्या करके और उसमें प्रयुक्त हुए **अभ्रान्त** विशेषण की उपयोगिता बतलाते हुए **''भ्रान्तं ह्यनुमानम्''** इस वाक्य के द्वारा अनुमान को भ्रान्त प्रतिपादित किया है। जान पड़ता है इस सबको भी लक्ष्य में रखते हुए ही सिद्धसेन ने अनुमान के **''साध्याविनाभुनो (वो) लिङ्गात्साध्यनिश्चायकमनुमानं''** इस लक्षण का विधान किया है और इसमें लिङ्ग का **साध्याविनाभावी** ऐसा एकरूप देकर धर्मकीर्ति के **त्रिरूप** का-पक्षधर्मत्व, सपक्षसत्व तथा विपक्षासत्वरूप का निरसन किया है। साथ ही, **'तदभ्रान्तं समक्षवत्'** इस वाक्य की योजना द्वारा अनुमान को प्रत्यक्ष की तरह अभ्रान्त बतलाकर बौद्धों की उसे भ्रान्त प्रतिपादन करनेवाली उक्त मान्यता का खण्डन भी किया है। इसी तरह **''न प्रत्यक्षमपि भ्रान्तं प्रमाणत्वविनिश्चयात्''** इत्यादि छठे पद्य में उन दूसरे बौद्धों की मान्यता का खण्डन किया है, जो प्रत्यक्ष को अभ्रान्त नहीं मानते। यहाँ लिङ्ग के इस एकरूप का और फलतः अनुमान के उक्त लक्षण का आभारी पात्रस्वामी का वह हेतुलक्षण है, जिसे न्यायावतार की २२वीं कारिका में **''अन्यथानुपपन्नत्वं हेतोर्लक्षणमीरितम्''** इस वाक्य के द्वारा उद्धृत भी किया गया है और जिसके आधार पर **पात्रस्वामी** ने बौद्धों के त्रिलक्षणहेतु का कदर्थन किया था तथा **त्रिलक्षणकदर्थन**[२१] नाम का एक स्वतन्त्र ग्रन्थ ही रच डाला था, जो आज अनुपलब्ध है, परन्तु उसके प्राचीन उल्लेख मिल रहे हैं। विक्रम की ८वीं-९वीं शताब्दी के बौद्ध विद्वान् **शान्तरक्षित** ने **तत्त्वसंग्रह** में त्रिलक्षणकदर्थन सम्बन्धी कुछ श्लोकों को उद्धृत किया है और उनके शिष्य **कमलशील** ने टीका में उन्हें **''अन्यथेत्यादिना पात्रस्वामिमतमाशङ्कते''** इत्यादि

२१. महिमा स पात्रकेसरिगुरोः परं भवति यस्य भक्त्यासीत्।
पद्मावती सहाया त्रिलक्षणकदर्थनं कर्त्तुम्॥१२॥ मल्लिषेणप्रशस्ति (श्र.शि. ५४)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in